सिद्धान्तवारिधि—

पं० नरसिंह दास जी

इत्येतेषां कर-कमलेषु

सादरं समर्पकः, आज्ञाकार्यनुजः

माणिकचन्द्रः कौन्देयः

* नमो महावीराय *

धर्म-फल-सिद्धान्त

(धर्मश्च फलञ्च सिद्धान्तश्च धर्मफलसिद्धान्ताः)

लेखकः—

स्याद्वाद वारिधि, सिद्धान्त महोदधि, तर्क-रत्न,
न्याय दिवाकर, दार्शनिक शिरोमणि, न्यायाचार्य

श्रीमान् पं० माणिकचन्द्र जी कौन्देयः

चावली निवासी, सहारनपुर।

प्रकाशकः—

अकलङ्कप्रेस, रानी बाजार, सहारनपुर

मिती-कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी,
वीर निर्वाण सं० २४७४

प्रथम निवह
१००० प्रति

मूल्य-त्रिः **स्वाध्यायः**
(तीन बार)

* पुस्तक-निष्ठ विषय सूची *

सार्वश्रीद्वादशाङ्गाम्बुनिधिसुमथनोत्पन्नभाङ्मत्यन्थतुल्य-
श्रीमत्तत्त्वार्थ—शास्त्राभिलुठनजनितानेकरत्नाप्त्युपज्ञम् ।
सत्याङ्कस्यात्प्रमाणैर्वकृतिनयनवचः सप्तभंगैर्भवेद्वो (द्यो)
जित्वैकान्तप्रवादानधिगमजसुदृग् लब्धयेध्यात्मशास्त्रम् ॥

श्रीमान् स्वर्गीय परम-पूज्य सिद्धान्त वारिधि

पं० नरसिंहदास जी प्रतिष्ठाचार्य का संक्षिप्त जीवन-परिचय

आगरा नगर (संयुक्तप्रान्त) से ७ कोस दूरी पश्चिम दिशा में 'चावली' एक सुन्दर एवं प्रसिद्ध गांव है इसके चारों ओर १६ उपगांव हैं। इस गांव में एक सुन्दर जिनालय और १६ घर पद्मावती पुरवाल दिगम्बर जैनों के थे (जिनमें से अब कुछ कम हो गये हैं क्योंकि यहां के अनेक परिवार अब भिन्न भिन्न नगरों में रहने लगे हैं) उनमें से एक प्रमुख कुलपति का नाम लाला चन्दराम जी था। ला० चन्दराम जी सौम्यस्वभावी, धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उनके प्रतापसिंह जी, उमरावसिंह जी, हेतसिंह जी, राजाराम जी ये चार पुत्र हुए। चारों पुत्र कट्टर धार्मिक एवं वीर

थे। ला० राजाराम जी तो अच्छे प्रसिद्ध पहलवान भी थे। इन चारों भाइयों में से उमरावसिंह जी के केवल पुत्रियां हुईं, पुत्र न हुआ अतः उनकी वंशपरम्परा आगे न चल सकी। शेष तीनों भाइयों की वंश-परम्परा अच्छी फूली फली। सब से बड़े लाला प्रतापसिंह जी के पुत्र रणछोरदास जी चावली में त्यागी उदासीन वृत्ति से रहते हैं। पच्चीस वर्ष से एकाशन करते हैं। पांचवीं प्रतिमाका पालन करते हैं। इनके चार पुत्र हैं। राजाराम जी के गुणधरलाल जी आदि चार पुत्र हुये।

तृतीय पुत्र पूज्य पिता जी श्रीमान् ला० हेतसिंह जी अपने समय के एक अच्छे वैद्य, धर्मज्ञ, शास्त्र-व्याख्याता थे वे यद्यपि संस्कृत-भाषा उच्च नहीं जानते थे किन्तु हिन्दी भाषा के अच्छे विद्वान थे। लाला हेतसिंह जी के चरित्रनायक श्रीमान पं० नरसिंहदास जी तथा मैं (न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्र) ये दो सुचरित्र पुत्र हुए। भाईजी श्रीमान् पं० नरसिंहदास जी का जन्म वि० सं० १६२६ में हुआ। मेरा जन्म माघ शुक्ला ५ वि० सं० १६४३ में हुआ। मैं (माणिकचन्द) भाई जी से १४ वर्ष छोटा हूं। पूज्य पण्डित नरसिंहदास जी ने प्रारम्भिक शिक्षा छठी कक्षा तक अपने गांव की सरकारी पाठशाला में पाई। पिता जी एक अच्छे शिक्षा प्रेमी थे बड़े धर्मात्मा थे, आठ वर्ष की अवस्था से ही रात्रि-जल का त्याग था अष्टमी, चतुर्दशी, नन्दीश्वर-पर्व दशलक्षण में सर्वदा जीवन-पर्यंत एकाशन किया उपवास बहुत किये। वनस्पतिओं में मात्र ५० हरिओंका यम था, अभक्ष्यभक्षण

सप्त-व्यसन का त्याग था पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही चार-सीकों का नियम था यदि वे सुपारीभी खाते तो एक शुद्ध स्थान पर बैठकर खाते थे। कुल्ला कर उठते थे वह एक सीक समझी जाती थी, मैंने कभी उनको कफ, खांसी, जुकाम, बुखार होते नहीं देखा पतला चञ्चल नीरोग शरीर था, कईबार सम्मेदशिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरिनार जी आदि क्षेत्रों की पैदल बन्दनायें कीं। द्वाद-शाङ्ग वाणी के प्रचार की अटूट भावना थी, देशांतरों में भेजीं उनकी सैकड़ों विशाल चिट्ठियों और हजारों मौखिक उपदेशों से हम दोनों भाइयों को शुभ शिक्षायें प्राप्त हुईं। वे सन्तोषी अल्पा-रम्भी सद्गृहस्थ थे। उनकी उत्कट इच्छा थी कि उनका पुत्र संस्कृतभाषा का प्रकाण्ड विद्वान् बने। तदनुसार उन्हों ने पण्डित नरसिंहदास जी को हिन्दी की छठी कक्षा पास कराकर अलीगढ़ की दिगम्बर जैन पाठशाला में संस्कृत पढ़ने के लिये भेजा। यह पाठशाला रानीवाले सेठों की सहायता से श्रीमान् पं० छेदालाल जी की देख रेख में चलती थी। (श्रीमान् पं० छेदालालजी तथा स्व० श्रीमान् पं० प्यारेलाल जी पाटनी अलीगढ़ ने पद्मावती पुरवालीय-विद्वान् श्रीमान् पं० छत्रपति जी से शिक्षा प्राप्त की थी पं० छत्रपति जी अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे) पं० नरसिंहदास जी अलीगढ़ में पं० छेदालाल जी से धर्म-शास्त्र और ब्राह्मण पण्डित जीयालाल जी से संस्कृत व्याकरण, काव्य, साहित्य अध्ययन करते थे।

उस समय पढ़नेके लिये विद्यार्थियों को आज कल सरीखी

छात्रावास (बोर्डिङ्ग हाऊस) आदि सुविधाएँ न थीं, अतः खान पान आदिके अनेक कष्ट उठाकर अलीगढ़से कीन्स कालेज बनारस की संस्कृत प्रथमा-परीक्षा पास की। तत्पश्चात् अलीगढ़ में शिक्षा का प्रबन्ध सन्तोष-जनक न होने के कारण और संस्कृत भाषा के केन्द्र बनारस में अध्ययन की प्रशंसा सुनकर पण्डित नरसिंहदास जी संस्कृत भाषा के उच्च अध्ययन के लिये काशी चले गये।

बनारस में संस्कृत पढ़ने के लिये उन्हें बहुत कड़ी तपस्या करनी पड़ी। क्योंकि उस समय वहां जैन विद्यार्थियों के पढ़नेके लिये न तो कोई विद्यालय था और न कोई छात्रालय (बोर्डिंग-हाऊस)। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि बनारस के ब्राह्मण विद्वान् वेदविरोधी होने से जैनों को अछूत जैसा समझते थे और जैनों को पढ़ाना तो दूर की बात रही उनको पास बिठाने में अपना घर अपवित्र हुआ चिल्लाते थे और उनको छूलेने से स्नान करते थे तथा उनके साथ बात चीत कर लेने पर अपने मुख को अपवित्र हुआ मानते थे।

अतः उस समय बनारस में किसी ब्राह्मण विद्वान् से जैन विद्यार्थी अपने वास्तविक रूपमें संस्कृत न पढ़ सकता था तदनुसार श्रीमान् पं० नरसिंहदास जी, उनके ताऊजात भाई रणछोरदास जी, न्यायदिवाकर स्व० पं० पन्नालाल जी, स्व० पं० गौरीलाल जी, स्व० पं० रामदयालु जी, स्व पं० कलाधर जी ने ब्राह्मण वेश में वैसे नाम रखकर अनेक विपत्तियां सहते हुये संस्कृत भाषा का

अध्ययन किया, जैसे बौद्ध वेष में माननीय श्री अकलङ्क निषकलङ्क ने अध्ययन किया था। तत्कालीन बनारस के प्रख्यात विद्वान् स्व० श्री महामहोपाध्याय तात्या शास्त्री, म० म० पं० सीता राम जी शास्त्री, म० म० दामोदर शास्त्री आदि से सिद्धांत कौमुदी (मनोरमा), दिनकरी, साहित्य दर्पण, माघ, किरात, नैषध आदि व्याकरण, न्याय, साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन किया। बनारस में कपट ब्राह्मण वेप का कुछ रहस्य खुल जाने का आभास हो जाने पर वहां से भाग कर आप नवद्वीप (नदिया शान्तिपुर) पढ़ने चले गये वहां पर भी ब्राह्मण रूप में पंचलक्षणी, सामान्य निरुक्ति आदि नव्यन्याय का अध्ययन किया। इस प्रकार चरितनायक श्रीमान् पं० नरसिंहदास जी ने बड़ी विपत्तियों, कठिनाइयों को पार करते हुये विद्याध्ययन किया।

अध्ययन समाप्त करके श्रीमान पं० नरसिंहदास जी अजमेर में श्रीमान् स्व० सेठ मूलचन्द्र जी सोनी के अनुरोध पर पढ़ाने के लिये २०) मासिक पर नियुक्त हुए, वहां पर आपने चारों अनुयोगोंका अच्छा स्वाध्याय किया और स्व० श्रीपण्डित वलदेवदास जी के कादाचित्क सत्सङ्ग से तथा पं० मोहनलालजी के सम्पर्क से अच्छा सैद्धान्तिक-ज्ञान प्राप्त कर लिया। साथ ही बिधिकर्म, प्रतिष्ठाकाण्ड के ग्रन्थों का परिशीलन किया।

सं० १९५४ को मथुरा (चौरासी) में स्थापित हुये महाविद्यालय में द्वितीय अध्यापक होकर २६) रु० मासिक वेतन पर गुरु गोपालदास जी के विशेषाग्रह से पढ़ाने चले आये। मथुरा में

आपसे, मैंने (लघु भ्राता पं० माणिकचन्द्र) पं० लालाराम जी, मैनपुरी पं० रामप्रसाद जी बम्बई, स्व० पं० मनोहरलाल जी. पाढ़म पं० दामोदरलाल जी खुरई, पं० अमोलकचन्द जी उड़ेसर, पं० मक्खनलाल जी देहली, पं० सोनपाल जी सरनऊ, स्व० पं० हीरालाल जी, पण्डित झम्मनलाल जी कामा आदि विद्वानों ने शिक्षा प्राप्त की। उस समय मेरी आयु ११ वर्ष थी। उन दिनों न्याय वाचस्पति, स्व० श्रीमान् पं० गोपालदास जी बरैया तथा पं० धन्नालालजी आदि ने एक पण्डित सभा स्थापित की थी उसके आप मन्त्री थे अनेक प्रश्नों के उत्तर देते थे। पद्मावतीपुरवाल सभा के भी आप मन्त्री रहे। श्रीमान् सेठ नेमीचन्द जी टीकमचंद जी अजमेर के साग्रह आह्वान पर सं० १९६१ में पण्डित जी पुनः अजमेर पढ़ाने के लिये चले गये, जैन पाठशाला में अनेक छात्रों को पढ़ाया। उन दिनों श्रीमान् स्व० सेठ कल्याणमल जी इन्दौर ने उज्जैनमें पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराई उसके प्रतिष्ठाचार्य श्रीमान पण्डित नरसिंहदास जी थे प्रतिष्ठा आपने ऐसे सुन्दर-विधान के साथ की कि समस्त आगन्तुक व्यक्ति उससे बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए मैं भी उज्जैन गया था। सं० १९६५ में सम्मेदशिखरपर जो सिवनी निवासी स्व० श्रीमन्त सेठ पूरणसाह जी ने प्रतिष्ठा कराई थी उसके प्रतिष्ठाचार्य भी आप थे। बुन्देलखण्ड में भी कई प्रतिष्ठायें आपने कराई थीं।

अजमेर में स्वर्गीय पं० बनारसीदास जी आदि को पढ़ाया पण्डित जी को हजारों श्लोक कण्ठस्थ थे। अजमेर में कोई अधिक

काम नहीं था अत: दिनरात शास्त्र-व्यालोडन करते रहते थे।

इस वर्ष पण्डित जी के ऊपर महान् दुख का प्रकरण उपस्थित हो गया। महान् परोपकारी स्नेह-वारिधि पूज्य पिता जी का चावली में स्वर्गवास हो गया। संसार में सभी माता, पिता अपने पुत्रों से स्नेह करते हैं, किन्तु यह पिता लोकातिक्रान्त विलक्षण स्नेह करने वाले थे, वे प्राचीन दिगम्बर आचार्यों के महान् ग्रन्थों का अध्ययन, अध्यापन, कर स्वपर कल्याण करना, यश: उपार्जन करना, धार्मिक आचरण करना कराना यह सत्पुत्र का कर्तव्य समझते थे। सदा शुभ भावों को अर्पण करते रहते थे, उन दिनों अपने प्राण-प्रिय लड़कोंको कौन बङ्गाल बनारस भेजता था, किन्तु उन्हों ने ठोस पुत्र-स्नेह यही समझा कि यह लड़का उच्चकोटि का विद्वान् बनकर जिनागम की प्रभावना करे। उन्हों ने अपने तन मन धन को पुत्र शिक्षामें लगा दिया था। तभी तो ऐसी निकृष्ट परिस्थितियों में पण्डित जी को प्रशस्त विद्वान् बना सके थे।

पूज्य पिता जी ने तीनों काल में हम दोनों से गृहस्थ सम्बन्धी कुछ भी काम कराने की इच्छा नहीं रक्खी। एक लोटा पानी भी नहीं खिचवाया। सब कार्य अपने हाथ करते थे। कभी एक पैसा कमाने की या कमाई लेने की स्वप्न में भी वांछा नहीं की, कमाकर कुछ रुपये दिये भी तो उन्हों ने उपेक्षा भाव रक्खा, लिये नहीं। इन कार्यों में फंस जाने से वे ज्ञानोपार्जन में विघ्न होना अनुभव करते थे। स्वयं अच्छा उपार्जन कर लेते थे।

पूजन-पाठ का बहुत उत्साह था। श्री समन्तभद्राचार्य, कुन्दकुन्द, नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती, अकलङ्कदेवआदि महर्षियों के गम्भीर ग्रन्थों में छिपे हुये द्वादशाङ्ग-वाङ्मय के प्रचारकी तीव्र भावनायें सर्वदा उनके हृदय में अटूट भरी रहती थीं। देशांतर जाते समय भाईजी की सूत की कठोर करधौनी में रुपयों के अतिरिक्त छोटे लत्तामें छिपाकर दो तोला सोना बांध दिया करते थे कि कष्ट अवसर पर सोना वेच कर अध्ययन करते रहना. पूज्य पिता जी के गुणों का स्मरण कर अब भी आंखे साश्रु हो जाती हैं। आयुष्य के अन्तिम निषेकों पर किसी का वश नहीं।

पूज्य पिता जी का स्वर्गवास होने के पश्चात् पण्डित जी ने अजमेर की नौकरी छोड़कर चावली में ही रहने का विचार किया लेन-देन गहना रखने का व्यापार बढ़ा लिया यों इन दिनों डेढ़सौ रुपये मासिक की आय हो जाती थी, पं० जी किसी आसामी को सताते नहीं थे। उनके व्यवहार से सर्व ग्रामवासी प्रसन्न थे। कुछ चालाक आदमियों ने पण्डित जी की सरलता अनुसार धोखा दिया, यों दस हजार रुपया मारा गया। पण्डित जी सन्तोषी थे आनन्द के साथ छब्बीस वर्ष चावली में रहे। विक्रम सम्बत् १९८८ में पण्डितजी को इष्ट-वियोग का दुख सहना पड़ा। प्रसव अवस्था में पक्षाघात हो जाने से तीसरी पत्नी का भी वियोग हो गया।

त्यागी पुरुष तो धन कलत्र आदि का त्याग कर ही देते हैं तभी वे उत्कृष्ट व्रतों का पालन कर पाते हैं। किन्तु सज्जन

सद्गृहस्थके लिये इस युगमें न्यायोपार्जित धन, और पूर्वविवाहित धर्मपत्नी का होना आवश्यक है। वृद्ध अवस्था में वैयावृत्य, सद्व्यय, तीर्थ-यात्रा, परोपकार, मुनिदान आदि में इन्हीं दो का सहारा है। धर्म-पत्नी का अभाव गृहस्थ अवस्था में खटकने की बात है। "ग्रहिणीं गृहमित्याहुः"

पण्डित जी के चार पुत्र हैं। बड़ा पुत्र नमिचन्द्र चावली में काम करता है। नमि के पांच पुत्र और दो लड़कियां हैं। दूसरा पुत्र ताराचन्द्र दरबे (मथुरा) औषधालय में वैद्य है इसके पांच लड़के और दो लड़कियां हैं। तीसरा लड़का हेमचन्द्र सर सेठ भागचन्द्र जी महोदय के पास अजमेर में रहता है, इसके दो पुत्र और दो पुत्रियां हैं। चौथा पुत्र सुमतिचन्द्र आगरेमें ऐम०, ए० ऐल०. टी० की परीक्षा देरहा है, इसका विवाह हो चुका है। पण्डित जी की लड़की जारखी व्याही है।

सरसेठ भागचन्द्र जी महोदय ने पं० जी को कुल-क्रमागत वात्सल्यानुसार बड़े सन्मान और आग्रह के साथ सौ रु० मासिक वेतन पर पुनः अजमेर बुला लिया और अपने रङ्ग-महल में ठहराया। कोई विशेष कार्य नहीं दिया, सेठानी और सेठ जी को पं० जी पढ़ाते थे। पण्डितजन स्वाध्याय, अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त और व्यापार कर ही क्या सकते हैं?

सरसेठ भागचन्द्र जी ने छोटी ही अवस्था में अनेक गुण प्राप्त कर लिये हैं। इनको कुटुम्ब-परम्परा से विद्वत्स्नेह है। पञ्जाबवासी पं० मथुरादास जी, जयपुरवासी पं० सदासुख जी, पं०

धन्नालाल जी गोधा, पं० बलदेवदास जी, पं० गोपालदास जी, पं० बनारसीदास जी आदि गृहीय-विद्वान् के रूप में सेठ जी के पूर्ववर्तियों के यहां रह चुके हैं।

अब भी सरसेठ भागचन्द्र जी को जाप, पूजन, स्वाध्याय ध्यान, विद्वत्समागम का अधिक उत्साह रहता है। भाद्रपद में रत्नत्रय व्रत करते हुये उनकी सौम्यमूर्ति, दर्शनीय अनुकरणीय हो जाती है। पांच दिन तक नंगे पांव रहते हैं। मन्दिर जी को नंगे पैर जाते हैं। प्रासाद, हवेली, सवारी, भूषण आदि का त्यागकर केवल जिन-मन्दिर या शहर से बाहर छोटी सी कोठरी में विविक्त रहते हैं। अन्य भी धनिकोचित अनेक गुण हैं। राज राष्ट्र जनता में अनिच्छ उपकारों द्वारा अत्यधिक मान्यता बढ़ा ली है। मिलन प्रकृति हैं। धन, भोग, कुटुम्ब, इन्द्रिय-विषय आदि में अत्यासक्ति नहीं है धर्माचरण से परिणाम अनुस्यूत रहते हैं। सम्यक्त्व के सभी अङ्गों को पालते हैं।

पण्डित जी से इनने कतिपय श्रावकाचारों का अध्ययन किया। उन्हीं दिनों पण्डितजी के ऊपर पुनः दुःख-प्रकरण आया दो पुत्र, एक पुत्री, छह पौत्रों और चौदह प्रपौत्रों में रहते हुये भी चावली में माता जी का अट्ठासी वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। ये माताजी भी गम्भीर धर्मात्मा, गृहव्यवस्था-दक्ष थीं, अनेकव्रत, उपवास, रस-त्याग, तीर्थ-यात्रायें की थीं। रात्रि जल का त्याग तो सात वर्ष की उम्र से ही था, भोली, सौम्य, सरल प्रकृति थी, अस्सी कुटुम्बी जीव उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते

थे। कईबार सम्मेदशिखर आदि तीर्थोंकी यात्रा की, उद्यापन भी किये। दोनों समय दर्शन, जाप्य, का नियम था। समाधि मरण के दिन भी जिन-दर्शन किये। सभी कुटुम्बी उनकी आज्ञा पालते थे। धन कुटुम्बियों में उनका तीव्रराग नहीं था। सदा परिणाम अच्छे रहते थे। माता जी के स्वर्गारोहण से दोनों पुत्रों को शोक हुआ। ऐसे शुभ-भावों पूर्ण आशीर्वाद देने वाली आत्माओं की न्यूनता है। "जगदस्थिरम्"।

पण्डित जी सदा से ही धर्म-सेवन करते रहे। प्रतिदिन पञ्च-स्तोत्रों का पाठ, जाप्य, ध्यान, जिनार्चा, स्वाध्याय का नियम उनका जीवन भर निभ गया था। सम्मेदशिखर जी, गिरनारजी चम्पापुर, पावापुर, शत्रुञ्जय आदि क्षेत्रों की वन्दनायें की थीं। तथा अन्य कुटुम्बीजनों को तीर्थ-यात्रा धर्मसेवन में लगाये रहते थे, सन्तान को उचित शिक्षा-सम्पन्न सदाचारी बनाया। पण्डित जी ने चावलीमें एक छोटा सा औषधालय खोल रखा था। बिना मूल्य औषधियां बांटा करते थे। बच्चों की बीमारी को शीघ्र दूर कर देते थे। दो दो चार चार कोस के रुग्ण बच्चे लाये जाया करते थे। पण्डित जी की चिकित्सा से वे आरोग्य पाते थे, कितने ही गरीबों पर व्याज छोड़ देते थे।

सेठ पद्मचन्द्र जी आदि के सादर बुलाने पर पण्डित जी तीन चार बार दशलक्षण-पर्व में आगरा गये। शास्त्र प्रवचन किया। आगरे वालों ने प्रसन्न होकर पण्डित जी को "सिद्धांत-वारिधि" पदवी से सुशोभित किया। पण्डित जी को समझाने

का प्रक्रम बड़ा अच्छा आता था। कठिनातिकठिन जैनसिद्धांतके प्रमेयों को युक्ति तथा उदाहरणों द्वारा गले उतार देने में वे बड़े सिद्धहस्त थे। मन्दमति श्रोताओं को भी बड़ी कुशलता से समझा देते थे। चूंकि पण्डित जी पूजन, पाठ, प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, कर्मकाण्ड, व्याकरण, न्याय, प्रतिष्ठा विधान मन्त्र-शास्त्र के प्रकाण्ड ज्ञाता थे। अतः उनके प्रसाद गुणमय सुश्राव्य शब्दों या प्रश्नोत्तरों को सुनकर श्रोताजन आनन्द से गद्गद हो जाते थे। सभी बिषयों के बहुशास्त्रज्ञ थे। मुख से शब्द निकलते ही प्रश्नकर्त्ता के अभिप्राय को जान लेते थे। पण्डितजी की बिद्वत्ता गम्भीर थी। दर्शन और चारित्र भी प्रशस्त थे।

सौम्य स्मित लाल तेजस्वी मुख था, दन्तावलि, नेत्रज्योतिः शरीरकान्ति ठीक थी। अर्थोपार्जन में सत्य अचौर्य निष्कपटता से व्यवहार करते थे। द्रव्य खर्च करना रुचता था। कौटुम्बिक प्रतिष्ठा बढ़ाई। स्वकीय पद्मावती पुरवाल जाति में तो प्रतिष्ठा थी ही किन्तु अन्य खण्डेलवाल, अग्रवाल, परवार आदि प्रशस्त जातियों में भी पण्डित जी का बहुत आदर था। सरसेठ हुकमचंद जी, सेठ टीकमचन्द्र जी, सरसेठ भागचन्द्र जी सौनी; सेठ गंभीरमल जी, सेठ पद्मचन्द्रजी आदि श्रीमान् तथा विद्वद्वर्य पं० गोपाल दास जी, पं० धन्नालाल जी, पं० पन्नालालजी न्याय दिबाकर, पं० पन्नालाल जी गोधा आदि विद्वान तथा त्यागीवर्ग सभी सामोद उच्च आसन प्रदान करते थे।

पूज्य भाई जी को मुझ पर अनुपम प्रेम था। अध्ययन

अध्यापन काल में मुझे निराकुल रक्खा। सभी लड़के लड़कियों के विवाह अपने हाथ से किये। पिता के समान उन्हों ने मेरा लालन-पालन किया। उनके प्रेम-व्यवहार का स्मरण कर मेरे नेत्र आर्द्र हो जाते हैं। मैं भी यथोचित उनकी भक्ति, विनय सन्मान सेवा करने में अपना परम सौभाग्य समझता रहा हूं। जनता कहती थी कि इन दोनो में राम-लक्ष्मण के समान अकृत्रिमस्नेह है। वस्तुत: मैं उनकी पर्याप्तसेवा न कर सका इसका मुझे अनुताप है। मैंने तथा बहू बेटों लड़के लड़कियों चचेरे भाई आदि सभी कुटुम्बिजनों ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। साठ कुटुम्बीजन एक सूत्र में बन्धे हुये हैं। सबके सूत्रधार पूज्य भाई जी थे।

पण्डित जी का भोजन, वसन, व्यवहार पवित्र था। सेव्य विषयों में भी अनेक पदार्थों की आखड़ियां ले रक्खीं थीं। घर का पिसा आटा खाते थे, नल का पानी कभी नहीं पिया, डाक्टरी हकीमी दवा का सेवन नहीं किया। वैद्य या हकीम से औषधि का पर्चा लिखवा लेते थे, घर में शुद्ध औषधि बना कर खाते थे। दस वर्ष की अवस्था से ही बाजार की मिठाई खाने का त्याग था कभी जौनार में भोजन नहीं किया घर की जौनार या बरातमें भी उनके लिये कच्ची रोटी अलग बनती थी। ऊन के वस्त्र कभी नहीं पहिने। त्यागियों की सी वृत्ति थी। दस वर्ष से तो अत्युदासीन परिणाम हो गये थे। अकषायभाव, अहिंसा, शान्ति बहुत बढ़ा ली थी। ऐसे उद्भट विद्वान् सच्चरित्र महान् पुरुषके

गुणों का प्रतिपादन करना हमारी लघु मनीषा और लोह लेखनीसे शक्य नहीं है।

अजमेरमें सेठ भागचन्द्रजी महोदयने पण्डितजीको निराकुल सिरमाथे रखा। यों सरसेठ जी के पण्डित जी सकृतज्ञत्वोपकृत थे। आयुष्यकर्म के अन्तिम निषेक स्वरूप यमराज को किसी पर दयाभाव नहीं है। आठ दिन प्रथम पण्डित जी को ज्वर का आवेश हुआ अनेक वैद्योंने यही कहा कि यह घातक ज्वर है। पण्डित जी बराबर आत्म-चिन्तन में मन को लगाये रहे। हेमचन्द्र ने चिकित्सा, परिचर्या, धर्म-श्रवण कराया। महान दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कार्तिक सुदी १३ संवत् २००१ को दिन के बारह बजे नमस्कार मन्त्र का चिन्तन करते हुये पूज्य भाई जी स्वर्गवासी हो गये। उपस्थित कुटुम्बियों और नगरवासी जैन-बन्धुओं को महान् दुःख हुआ, जोर से रोने लगे। सरसेठ जी प्रातः काल से ही निर्जल उनकी परिचर्या में पं० जी के पास विराजे हुये थे। अनेक उपचार किये सब व्यर्थ गये। उस समय सेठ जी भी रुदन करने लगे। दैव-व्यवस्था पर किसी का वश नहीं चलता है। सेठ जी ने अपने मान्य गुरुजी की कन्धी में चरणों की ओर लगकर शव-यात्रा की। यों जैन-समाज का उपकारी सूर्य सैकड़ों हजारों जनों को शोकाकुलित कर अस्त हो गया।

"यमस्य करुणा नास्ति कर्तव्यो धर्म-सञ्चयः"

पूज्य भाई जी ने मुझे बालकवत पाला पोसा निश्चिन्त

रक्खा। मैं उनकी सेवा कुछ भी नहीं कर सका। वे मेरे सहोदर ज्येष्ठ भ्राता तो थे ही, साथ ही गुरु जी भी थे। अतः तदीय महान् उपकारों से प्रेरित होकर गुणस्मरणार्थ उनके कर कमलों में इस छोटी सी पुस्तकको समर्पण करता हूं।

भूयाद्भवक्लेश—भयोपशांत्यै।
शांतिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः।

अक्षात्मापेक्षमक्षेन्द्रिय—हृदयदयोपेक्षमक्ष्णोति साक्षात्,
काल—क्षेत्रस्थभावावधि नियतपदार्थांश्च विश्वानभीक्ष्णम्।
प्रत्यक्षं मंक्षु पूर्वाध्ययनपटुसमाकांक्षणीयं क्षमाढ्यं,
वैकल्याखिल्यधर्मोपहितविषयवित्त्याप्तये स्तान्मुमुक्षोः॥

(श्लोक० टीका)



प्राग्वक्तव्य

श्रीवीरोत्थाङ्गपूर्वप्रभृतिकमनवं मन्त्रमुच्चार्य्य धर्म-
शुक्लध्यानात्मिकां यां मतिमवधिमनःपर्ययौ चावहेल्य।
शब्दाद्यष्टाङ्गपूर्णां गृहिजनयतयो भावयन्त्युग्रभक्त्या,
पायाज्जीवस्वतत्त्वाद्यधिगतिकुशला साऽर्हतीभारती नः॥

इस दुःखादुःखपूर्ण संसार में मङ्गल, लोकोत्तम धर्मसेवन ही जीव का शान्ति-सुखद शरण है। वैसे तो इस पञ्चमकाल में सभी प्राणियों का जीवन सदा सङ्कटमय है। किन्तु इन तीस वर्षों में तो अचिन्तित असम्भावित कष्ट झेलने पड़े हैं। उनमें भी इन पांच-सात वर्षों में या वर्तमान अब्द में तो महर्घ्यता, मारकाट, छुराबाजी, बलात्कार, धनापहरण, बालक विनाश, स्वस्थानत्याग धर्म-भ्रष्टता, अग्निदाह, आर्त्त रौद्र परिणाम आदि नारकीय यातनाओं ने भारी सता रखा है। राजा, प्रजा, धनिक, निर्धन, पण्डित, मूर्ख सभी भय-ग्रस्त हैं। ऐसे उपसर्ग समयों में आचार्योंने सल्लेखनान्त धर्म-पालन ही आवश्यक उपाय बताया है। घोर विघ्नों का उचित कारणों से प्रतीकार किया जाय कहां तक करोगे। फिर भी जन्म, जरा, मृत्यु, इष्ट-बियोग, अनिष्ट-संयोग

आदि व्यथायें अपरिहार्य यों त्रिकाल त्रिलोक में हित यह धर्म ही शरण्य है।

वैसे तो देव-शास्त्र गुरु ही सब के महोपकारक हैं। फिर भी इस पर्याय में जैनधर्मोपयोगी ज्ञान प्राप्त कराने में मेरे निः-स्वार्थ उपकारी पूज्य भाई सिद्धांत-महोदधि पं० नरसिंहदास जी और स्याद्वाद वारिधि, न्यायवाचस्पति पं० गोपालदास जी वरैया गुरु हैं। यों माननीय पं० अम्बादास जी शास्त्री प्रभृति अजैन विद्वानोंसे भी अध्ययन किया है। मैं उन सबका कृतज्ञोपकृत हूं।

आर्हत धर्म शास्त्रों की पढ़ाई का प्रकरण बड़े भाग्य से मिलता है। ज्ञान को पहिलों से लेना और पिछलों को बांट देना यह गुरुपर्व क्रम सदा से चला आ रहा है विद्वान् का यह भी परम कर्तव्य है।

पांच ज्ञानोंमें चार ज्ञान तो निज के लिये ही हैं। हां श्रुत तो बहुभाग ज्ञानात्मक अपने लिये और अल्पभाग शब्दात्मक पर के लिये भी माना है। तदनुसार मैंने "जैनधर्मसिद्धांत" इस पुस्तक को लिख डाला है। कतिपय श्रावकों की प्रेरणा भी थी। इसके प्रमेय सब सर्वज्ञोपज्ञ आगम के हैं मेरी गांठ का कुछ नहीं, अन्वेषकों को शास्त्रोंमें सब मिल जांयगे थोड़ा यत्न करना पड़ेगा।

इस पुस्तक में धर्म क्या है? धर्म पालने का मुख्य फल क्या है? तथा ध्यातव्य सिद्धांत क्या है? इनका परामर्श हुआ है। युक्तियों, उदाहरणों और आगम वाक्यों से प्रतिपाद्य को समझाने का शक्तिभर प्रयत्न किया है। श्री समन्तभद्रादि गुरुजी

तो सर्वदा मस्तक पर और मन में विराजमान हैं हीं, तथा ऐह-पर्यायिक गुरुद्वय भी।

श्रीमान् माननीय स्वर्गीय दोनों गुरुओं के सन्मुख परीक्षा देना है। सौ में सौ नम्बर तो विरलके ही आते हैं। विस्मरण-वश त्रुटियां रह जाना सम्भव हैं। किन्हीं की ज्ञप्तियां स्यात् दूसरी तीसरी बार स्वाध्याय करने से ठीक हो जांय। या मुझसे साक्षात् चर्चा कर लेवें, फिर भी बहुश्रुत विज्ञ लोग शुद्ध कर सक्ते हैं। "नह्यखिल: सर्ववित्"। हम सब को ज्ञानमद हातव्य है।

पुस्तक को पढ़ने वालेभी नवीन सा ज्ञेय समझ कर त्वरित क्षोभ न करें, किन्तु गम्भीर परामर्श करें। इस पुस्तकमें सब जैन दर्शनकी ही फक्किकायें हैं। हां चाहे अनचाहे कचित् परुषभाषा का प्रयोग हो गया है। इसे किसी महान् दार्शनिक या स्तोता की पद्धति का अनुकरण-पाश कहिये, या मदीय व्यक्तित्व की धृष्टता ही मान लीजिये। यह जीव स्वदोषों से ही पराधीन है।

चालीस वर्षों से उपद्रवी, अनुपद्रव, पचासों छात्रों के पढ़ाने का जरठ कार्य करते रहने से कुछ ऐसी टेव सी पड़ गई है तथा जैन सभाओं के नाना प्रकृतिक श्रोताओं के शङ्का समाधान या तत्त्वचर्चा से भी ऐसी आदतें घर कर लेतीं हैं। व्यवहारकाल प्रभावक है। इस ही कारण आप शब्द के स्थान पर अनेक स्थलों पर तुम, तुमने, तुम्हारे आदि कठोर या प्रिय सम्बोधन-वाचक शब्दों का प्रयोग हो गया है।

सहनशील अध्येता उस पर लक्ष्य नहीं देवें। अन्तरङ्गमें

कोई भर्त्सना या कषायभाव नहीं हैं। अरति करने का कोई कारण भी नहीं है। मात्र समझने समझाने का सदभिप्राय है।

पठितृजन ! आप मेरी स्पष्टोक्ति पर कुपित न होवें "स्पष्ट-वक्ता न वञ्चकः"। गुरु कहते हैं कि 'ठगे नहीं निर्भय स्पष्ट कह देवे।' मनः और वचन की एकविषयता अच्छी है सबको इसेही अपनाना है। ग्रन्थों का परिशीलन करने वालों के निज के कुछ अनुभव होते ही हैं। अर्थात् सर्वज्ञोक्त तत्त्व को युक्ति, निदर्शनों द्वारा व्युत्पादन करने की प्रक्रिया सब की विभिन्न प्रकार है। "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना"। तत्त्व व्यवस्था में नहीं किन्तु प्रति-पादन सरणि में कुछ वक्ता को स्वातन्त्र्य भी प्राप्त है। पुस्तक छपाई में कुछ गलतियां रह गई हैं। शुद्धि सूचना-पत्र अनुसार पहिले पुस्तक को शुद्ध कर पुनः पुस्तकाध्ययन करें। गुरुजी कहते थे कि कि 'अशुद्ध' पुस्तकं शत्रुः' यह आपका नितान्त आवश्यक कर्त-व्य है।

मेरे हार्दिक स्नेहवत्सल बन्धुओ ! आप मुझे अपना ही समझ हंसनीरक्षीरन्याय सदृश प्रवृत्ति अनुसार लेखस्थ वीरशासन को अपना कर स्वपर कल्याण करें ऐसी पावन भावना है। जैन-शासनं जीयात्।

स्वर्गीय पूज्य भाई जी के उपकारों से रोमरोमाग्र कृतज्ञ हो रहा मैं इस उपहार को उनके कराब्जों में समर्पण करता हूं। "रागद्वेष रहित जैन-धर्म बढे रहो"

चतुरस्र घनाकारालोकस्थं यो विलोकयन् ।
हस्तामलकवल्लोकं श्री सुपार्श्वः श्रियं क्रियात् ।

माणिकचन्द्रः कौन्देयः (न्यायाचार्य)
चावली निवासी सहारनपुर वास्तव्यः
कार्तिक शुक्ला दशमी, वीरनिर्वाण सम्बत् २४७४
पता—जम्बूदास जी का छत्ता, सहारनपुर ।

नितान्त आवश्यक निवेदन

अशुद्धि शुद्धि सूचना—पत्रम्

पठनशील भ्रातृवराः—कई स्थलों पर अक्षम्य अशुद्धियां छप गयीं हैं अतः कृपया सब से प्रथम शुद्धि सूचना पत्र अनुसार पुस्तक को शुद्ध कर लीजियेगा । पश्चात् स्वाध्याय प्रारम्भ कर दीजियेगा।

जीवन-परिचय

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
नौत्रभाङ्मत्यन्थ	नौम्रत्यभाङ्मन्थ	१	१
प्रहिणी	गृहिणी	६	५

धर्मफल-सिद्धान्त

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
का	के	४	४	हाय	होय	६	८
विमले	विमल	७	११	समग्रह	समग्रमह	७	१२
विभूतियों का होना	विभूतियोंका चिरकालतक होना					८	१०
माक्ष	मोक्ष	८	१३	भगवान	भगवान्	८	१६
कम	कर्म	९	१०	भागेन	भोगने	९	१०
जा	जो	१०	१८	बध	बंध	१०	२०
हा	हो	१०	२०	आताआ	ओताओ	११	१०
थाड़ा	थोड़ा	११	१२	जैन	जिन	१४	५
विहार	मुनिविहार	१४	७	का	को	१५	४
अग्नि में लेकर	लेकर अग्नि में					१५	५
सुदर्शन	सुकौशल	१७	७	निठुर	निष्ठुर	१९	१४
धम	धर्म	२१	१६	सकगी	सकेगी	२२	२
जिसका	जिसको	२२	११	आनन्दोदगम	आनन्दोद्गम	२२	१२
हाता	होता	२२	१२	उपद्रुत	उपद्रवित	२३	२०
इसमें	किन्तु इसमें	२४	१०	जा	जो	२४	१२
हा	हो	२४	२०	करा	करो	२५	८
छापे	छाये	२६	१	लट्टू	लटटू	२७	२
हीं	ह्रीं	२९	१	हीं	ह्रीं	२९	२
निर्निमुक्त	विनिर्मुक्त					२९	५

सम्राट सम्राट् ३२ २ सस्कार संस्कार ३३ १६
या रत्न रत्न या ३६ ३ याग योग ३७ ६
मत्र मन्त्र ३७ १९ कोटर कोटी कोटाकोटी ५४ ९
बैठा बैठो ५६ ११ का की ५८ २०
का को ५९ ६ पटकारों की षट्कारकी ६१ १
सकती सकतीचुकी ६१ ३
पूर्ण श्रद्धा न रख तीव्र चारित्रमोह वश ६१ १३
है है ? ६२ १० तिर्यच तिर्यञ्च ६५ ३
ते कोई, देते कोई सङ्कीत ६६ २
निश्चित निश्चिन्त ६७ १ अन्यथा अपना ६८ १
कठार कठोर ६८ १८ स्वसवेद्य स्वसंवेद्य ७४ ८
जैमी जैनी ७७ ११ इन नहीं पहिले अण् पुनः
इन् प्रत्यय करने पर तद्धितान्त से तद्धितोत्पत्ति कठिन
विधि है। फिर स्त्रीलिंग में जैनिनी बनेगा। ७८ १३
वलदेव वसुदेव ७९ १५ ता तो ७९ १९
ससान समान ८३ १२ चौदश आदिको अधिक धर्म
पालो मुनि अतिथि हैं। श्रावक सतिथि हैं। ८५ ५
झट झट यत्नकर ८७ ४ "झाणणिलीणो हु अपम-
त्तो" गो० ८७ ९
सवेग संवेग ८७ १२ है हैं ८९ ६
महापाध्याय महामहोपध्याय ८९ १४
विपवेध विपवैद्य ८९ १४ पायाजाता, पायेजाते ९० ५

नमित्तिक	नैमित्तिक	९०	६	जाता	जाता है	९०	१७
वर्लन	वर्लिन	९१	२	करा	कर	९४	११
स्वसवेद्य	स्वसंवेद्य	९४	१५	निःकात्ता	निःकांक्षा	९६	१८
देना	देता	९६	२१	मर्यादा	मर्यादाबाह्य	९७	२१
चलित	चलितरस	९८	१	ता	तो	१००	१८
वासना	वासनाओं	१०१	५	उलझने	उलझाने	१०१	८
विनाद	विनोद	१०१	१२	मात्त	मोक्ष	१०४	६
देहलीं से	देहली	१०४	१७	वुछ	कुछ	१०६	१७
स्यात	स्यात्	१०७	२	काग्य	काम्य	१०७	१०
पापात्यंच	पायात्यंच	१०७	१८	का	को	१०७	२१
चन्द्रचार्य	चन्द्राचार्य	१०८	४	को	के	१०८	२१
वनट	वजट	१११	१६	कलो	कालो	११४	७
घाड़ा	घोड़ा	११५	१५	कितने	कितनीं	११७	१०
रानी	रानियों	११८	७	न्याख	नाख		
कपास	नारियल	१२१	५	प्याना	प्यानो	१२२	१४
कल्पवृक्ष चाहे जो कुछ पदार्थ दे देते तो दस जातियां क्यों मानीं गयीं ?		१२२	८	श्रत	श्रुत	१२३	१२
पूजनं	पूजन	१२५	१२	स्वायाय	स्वाध्याय	१२६	१६
की	को	१३१	१६	आकारकों	आवारकों	१३१	२०
मात्तार्थ	मोक्षार्थ	१३२	१५	ला	लो	१३२	१७
पुलद्‌ग	पुद्गल	१३५	१६	अवैं	आवैं	१४१	१०
वहां	कहां	१४५	१०	सी	ही	१४५	१७

इनके अवाय धारणा स्मरण ज्ञान हैं। १४८ १८

सम	समय	१५०	४	आंत	आर्त्त	१५१	२
कालुस्या	कालुष्या	१५१	५	कार्योत्याद:	कार्योत्पाद:	१५१	८
धिपाति	धिपति:	१५२	१३	अठाईस	अट्ठाईस	१५३	३
संस्कृत	संकृत	१५३	१४	घर्ष	वर्ष	१५३	२०
तत्व	तत्त्व	१५५	३	पश्चात	पश्चात्	१५६	१६
शरीरिक	शारीरिक	१५८	१६	शुद्ध्यर्थे	शुद्ध्यर्थं	१६२	१६

वाहर पर वाहर अङ्ग पर पड़ १६२ १६

ता तो १६३ १७ नहीं है हां मल मूत्र जीवों के योनिस्थान शीघ्र बन जाते हैं, अत: अस्पृश्य हैं, अशुद्ध हैं। १६३ १९

जती	जाती	१६४	७	प्रसुक	प्रासुक	१६४	८
अत एव	+++	१६६	१०	षंचेन्द्रिय	पंचेन्द्रिय	१६६	२०
अहरियमाण	आहरियमाण					१६७	२
का	को	१६७	८	ह	है	१६७	११
अव शेष	अवशेष	१६७	२१	करते	करता	१६९	२१
आदिका	आदिको	१७३	१४	अरवोंका	अरवों	१७४	११
विकत्रयों	विकलत्रयों	१७५	१९	माना	मानो	१७८	१५
अनुप्रक्षा	अनुप्रेक्षा	१८०	२१	कम	कर्म	१८१	१७
वग	वर्ग	१८८	६	दखिता है	दीखता है	१८८	९
जिणिन्दा	जिणिन्दो	१९५	१५	का	को	१९९	१६
शुधूद्या	शुध्द्य	२०३	८	पादत्यु	पादस्त्यु	२०४	३

धर्म-फलसिद्धांत



इस पुस्तक के लेखक—
श्रीमान् सिद्धांत-महोदधि, तर्करत्न, न्यायाचार्य
पं० माणिकचन्द्र जी, सहारनपुर।

❀ श्री: ❀

धर्मसेवन का प्रधान फल

कषाययोद्धृमोहारि–सम्राजं निजघान यः।
रत्नत्रयायुधैः पार्श्वः स मे पापानि कृन्ततु॥

धर्मतत्व का रहस्य जानने के प्रथम धर्म का लक्षण समझ लेना अत्यावश्यक है। आचार्यों का प्ररूपण है कि :—

"धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावेण परिणदो धम्मो।
रयणत्तयाणि धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो॥"

अर्थात् जिस किसी जीव, पुद्गल, धर्म द्रव्य आदि वस्तु का जो परानपेक्ष स्वाभाविक परिणमन है वह धर्म

है। अथवा आत्मा की उत्तमक्षमा, मार्दव आदि शुद्ध परिणतियां धर्म हैं एवं सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्रमय स्वकीय आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो जाना धर्म है। तथैव अन्य जीवों की दया पालना भी व्यावहारिक धर्म है।

श्री समन्तभद्राचार्य ने—

"संसार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे"

सांसारिक दुःखों से हटाकर जीवों को उत्तम सुख स्वरूप मोक्ष में धर देने वाले परिणाम को धर्म कहा है।

हां! न्याय शास्त्र में सुख को देने वाले या विघ्नों को दूर करने वाले आत्मीय गुण को धर्म माना है। कोई दार्शनिक स्वर्ग और मोक्ष के सम्पादक भावों को धर्म बताते हैं। ब्रह्माद्वैतवादी एवं विशिष्टाद्वैतवादी, ज्ञानाद्वैतवादी पण्डित तो अपनी निजात्म सत्ता का मटियामेट हो जाना ही धर्म पालन का चरम फल मान बैठे हैं। कर्मकांडी मीमांसक विद्वान् विधि लिङन्त वाक्यों द्वारा स्वर्गप्रद यागादि कर्म करने में ही धर्म कर्म की सफलता स्वीकार करते हैं। अन्य यवन, ईसाई, पौराणिक जन तो 'इष्टदेव की भक्ति या विश्वास करते रहना ही उत्कृष्ट धर्म है' यों अङ्गीकार करते हैं। कोई २ तो ऊबकर यों कह बैठते हैं कि—

'धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पंथाः'

धर्म का रहस्य तो अंधेरे में छिपा है बड़े मनुष्य जिस मार्ग पर चल चुके हैं वही धर्म पथ है।

इन सब की मण्डन-खण्डनात्मक पर्यालोचना करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। किन्तु इस कार्य को स्वाधिकार से मनसा कर चुकने पर युक्ति, प्रमाण और अनुभव से जो धर्म और उसका फल परीक्षित हुआ उसका निर्णय करना है।

इस दुःखमय चराचर जगत् में बहुभाग प्राणी दुःखित दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ये अपने मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्रों करके उपार्जित किये गये क्लेशों से छूटना भी चाहते हैं, किन्तु विवेक न होने के कारण पुनः उसी परिक्लेश के दलदल में फंस जाते हैं। यह दुःख परम्परा अनादि से संसारी जीवों को सता रही है। इन दुःखों से छुटाने का जो अव्यर्थ कारण होगा वही वस्तुतः धर्म शब्द का वाच्य हो सकता है। यह सिद्धांत सभी दार्शनिकों को सर्व सम्मति से अभीष्ट हो जाता है। अतः जीवों को ठोस हित की प्राप्ति और निकृष्ट अहित का परिहार कराने वाले धर्म का अन्वेषण करना आवश्यक है।

हेतुवाद आगम और स्वानुभव से जितना प्रमेयसमुद्र में गम्भीर प्रवेश करते हैं वहां तह पर पहुंच कर हमको यही धर्म का रहस्य मिलता है कि जो "तत्कालीन अलौ-

किक आत्मीय आनन्द का सम्पादक होता हुआ भविष्य में भी अभ्युदय या निःश्रेयस का साधक होय" अर्थात् उस समय भी स्वसम्वेद्य सुख स्वरूप होता हुआ जो कर्मों का संवर और निर्जरा का जनक होय। प्रवचनसार की "चारित्तं खलु धम्मो, धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि शुद्ध संपयोग जुदो, पावदि णिव्वाण सुहं" इत्यादि गाथाओं से भी धर्म का निचोड़ यही निकलता है।

जिज्ञासु भ्राताओ ! संसारी जीवों के अनेक कर्मों का बंध हो रहा है। धर्म या पुरुषार्थ से उन पौद्गलिक दुष्कर्मों का नाश कर दिया जाता है। मुमुक्षु का यही प्रयास है। इन सूक्ष्म कर्मों को सिद्ध करने के लिये अवसर नहीं है। तकदीर, मुकद्दर, भाग्य, धर्म, अधर्म, सभी को मानने पड़ते हैं। अतः धर्म का सिद्धांत लक्षण यह निर्णीत हो जाता है कि 'जो पीछे सुख का सम्पादक होय या न होय तथा पश्चात् संवर निर्जरा को भले ही न करे किन्तु वर्तमान में धर्म पालन के क्षण में अवश्य ही शुद्धि द्वारा आत्मीय अतीन्द्रिय आल्हाद स्वरूप होता हुआ बद्ध और बध्यमान कर्मों की निर्जरा तथा भविष्य में बंधनेवाले वत्स्यमान कर्मों का संवर कर देवे वह धर्म है।'

तत्त्वों का श्रद्धान करना विशेषरूपेण आत्मा के शुद्ध, द्रव्य, गुण पर्यायों की प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है।

वस्तु को अन्यूनानतिरिक्त तथा सर्वज्ञोक्त जिनवाणी का स्वाध्याय कर हेय, उपादेय पदार्थों को वैसा ही ठीक ठीक ज्ञान कर लेना सम्यग्ज्ञान है। वहिर्भूत पदार्थों में आसक्ति नहीं कर उन पर-पदार्थों का त्याग करते हुए सहज आत्म स्वरूप में रमण करना सम्यक्चारित्र है। धर्म से शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति, आत्मा में वन्धे हुये पुद्गल निर्मित कर्मों का संवर और निर्जरा हो जाना धर्म पालने का प्रधान फल है। तभी तो श्री समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में—

"सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः"

यानी-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को ही धर्म माना है। यत्याचार ग्रन्थों में तो पद पद पर धर्म का उक्त लक्षण पुष्ट किया गया है।

भोगभूमित्व, चक्रवर्तिपन, इन्द्र, अहमिन्द्र हो जाना धनाढ्य बन जाना इत्यादिक लौकिक ऐन्द्रियिक सुखों को तो धर्म का फल मानना निदान या सुखानुबंध नामक दोष बताया है। अष्टांग सम्यग्दर्शन को पालने वाला चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव ही जब कर्मपरवश, सांत, दुःख-मिश्रित, पापबीज ऐसे लौकिक सुख में आस्था नहीं रखता है तो भला पांचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक, आर्यिका और छठे, सातवें आदि गुणस्थानवर्ती संयमी मुनियों की बात

ही क्या है ? ये आशु मुमुक्षु जीव तो इन लौकिक धन प्राप्ति, पुत्र लाभ, यश होना, मुकद्दमा जीत जाना, आजीविका मिल जाना, आदि रागद्वेषमय फलों को प्रत्युत तीव्र घृणा ही से देखते हैं। यदि धार्मिक पुरुष भी सङ्कल्प विकल्पमय उक्त फलों की अभिलाषा करें तो संवेग और वैराग्य का होना व्रतियों के कैसे माना जा सकता है। सुखी या दुःखी कैसा भी जगत् होय, अथवा सुख भोगी या दुख भोगी शरीर होय, इनकी सभी परिणतियां धर्मात्माओं को संवेग और वैराग्य के लिये भावनी चाहिये "जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं" यह सभी व्रतियों के लिये सामान्य भावना है।

मोही जीवों ने जिन पूजन, गुरु सपर्या, स्वाध्याय, संयम, तप, तथा सामायिक, वंदना, कायोत्सर्ग आदि धर्मों का फल जो स्वर्ग प्राप्ति अथवा अहमिन्द्र हो जाना, सेठ बन जाना आदि मान रक्खा है यह उनकी भारी भूल है। वस्तुतः धर्म सेवन रत्नत्रय स्वरूप है और रत्नत्रय तो कर्मक्षय रूप मोक्ष का ही कारण है।

श्री अमृतचन्द्राचार्यने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखाहै कि—

रत्नत्रयमिहहेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।
आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराधः॥

इसका तात्पर्य यह है कि रत्नत्रय तो मोक्षका कारण है

चक्रवर्तीपन, पुत्रप्राप्ति आदि का कारण कथमपि नहीं है। धर्म पालते समय शुभ उपयोग के द्वारा जो थोड़ा सा पुण्य आस्रव हो जाता है और उससे जो देवगति, चक्रवर्तीपन, आरोग्य आदि की प्राप्ति हो जाती है यह तो एक प्रकार का अपराध है। आपने शुद्ध भावों में त्रुटि रक्खी, अतः पूर्ण संवर न होकर दीर्घ काल तक संसार परिभ्रमण करना पड़ा। तभी तो जिन पूजन करने वाला पहिले ही कह देता है कि—

"अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिञ्ज्वलद्विमलकेवलबोधवन्हौ,
पुण्यं समग्रहमेकमना जुहोमि।

हे भगवन्! मैं कोई लौकिक प्रयोजनों का प्रार्थी नहीं हूं आपके सामने इस केवलज्ञान रूप अग्नि में सम्पूर्ण पुण्य को जलाये देता हूं। आचार्य तो यह कहते हैं कि पुण्य और पाप दोनों ही सोने और लोहे की बेड़ी हैं, संसार में जकड़ने वाली हैं।

पूज्यपादाचार्य समाधितन्त्र में लिखते हैं कि—

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥८३॥
अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।

त्यजेतान्यपि सम्प्राप्य परमं पदमात्मनः ॥८४॥

अभिप्राय यह है कि निर्दोषसप्तमीव्रत, सुगन्धदशमीव्रत, नन्दीश्वर पूजा विधान, रविव्रत, जीवदया, मुनिदान, सराग संयम आदि परिणतियों करके पुण्यास्रव होता है। किन्तु मोक्षार्थी को अव्रतों के समान व्रतों का भी परित्याग करना पड़ेगा। धर्म पालने में आनुषङ्गिक मिल रहे ये पुण्याधीन लौकिक सुख तो एक प्रकार के विघ्न हैं। तेरहवें गुणस्थान में तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय हो जाने पर असंख्य इन्द्रों से पूज्य हो रहे जिनेन्द्र भगवान के प्रातिहार्य, समवसरण आदि विभूतियों का होना भी संसार बन्धन का कारण है सर्वोत्तम मार्ग तो ये ही था कि—

तीर्थङ्कर प्रकृति, उच्चगोत्र, मनुष्यायु आदि पुण्य-कर्मों का भी शीघ्र नाश होकर जल्दी से जल्दी मोक्ष की प्राप्ति हो जाती। हां! भव्य जीवों के भाग्य अथवा धर्म तीर्थ प्रणयन, असंख्य जीवों को सम्यक्त्व लाभ हो ये अन्य जीवों के इष्ट प्रयोजन हैं किन्तु तीर्थङ्कर भगवान तो संसार शृङ्खला में अधिक ठहरे रहने से टोटे में ही रहते हैं। गोम्मटसार कर्मकांड में तीर्थङ्कर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध ऊंचे संक्लेश परिणामों से होता बताया है—

"सव्वट्ठिदीण मुक्कस्सओ" गाथा १३४।

आजकल पञ्चमकाल में मोक्ष नहीं होती है कैसा ही

धर्म सेवन करो राग भाव छूटता नहीं है। वर्तमानके त्यागी उदासीन श्रावक या मुनि महाराज यदि सम्यग्दृष्टि हैं तो ये स्वर्ग में ही जावेंगे। एक भवतारी लौकान्तिक देव होना तो बहुत कठिन है। वहां स्वर्गोंमें उन्हें नाच गाना बजाना सैरसपाटा करना, देवदर्शन, प्रतिक्षण शृङ्गार में डूबे रहना, देवियों के साथ भोग विलास, इन्द्र द्वारा मान अपमान की प्राप्ति, इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, ईर्ष्या आदि रागद्वेष-मय भावो में असंख्याते वर्षों तक निमग्न होना पड़ेगा। उन परिणतियोंसे पुनः कर्म बंध होगा। यों न जाने जिन-दृष्ट कबतक यह कर्म बंध और फल भोगने की परम्परा चलती रहेगी। हां तीव्र आत्म विशुद्धि की भावना और पुरुषार्थ करने वाले भाव मुनियों को पुण्य, पाप से शीघ्र छुट्टी मिल जावेगी। कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन-काल में तो मोक्ष हो ही जावेगी। एक बात यह भी लक्ष्य में रखना कि उपशम श्रेणी का भी उत्कृष्ट अन्तर कतिपय अन्तर्मुहूर्तों से न्यून अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल माना गया है। इसमें अनन्तभव हो जाते हैं। सिद्धांत यह निकलता है, कि धर्म पालने का लक्ष्य इन्द्रिय-जन्य लौकिक सुखों की प्राप्ति करना नहीं है। बीच में कोई आनुषङ्गिक बिना--चाही बला आ पड़े तो हम क्या करें? परवश हमें वह इल्लत भी अस्वरस से भोगनी पड़ेगी। श्री

प्रवचनसार में लिखा है कि—

"नहि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसोत्ति पुण्णपावाणं।
हिण्डदि घोर मपारं संसारं मोह संछण्णो" ॥७७॥

भावार्थ—सोने या लोहे की सांकलों के समान जो पुण्य और पाप में अन्तर मान रहा है, वह मोहाक्रांत जीव घोर दुःखमय अपार संसार में भूल रहा है। वस्तुतः पुण्य पाप दोनों समानतया दुःख स्वरूप हैं। मुझे यह बतलाना है कि संसारी जीवों ने धर्म का फल जो पुण्यबंध समझ रक्खा है। यह ठीक नहीं है, धर्मसेवन का पुण्यबंध के साथ अव्यभिचारी कार्य कारणभाव नहीं है। अन्वय व्यभिचार आवे या व्यतिरेक व्यभिचार आवे यह आपत्ति तो पद पद पर है। किन्तु हमें तो यह सिद्ध करना है कि जिनोक्त धर्म पालने से मात्र तत्काल अलौकिक आनन्द प्राप्ति और कर्म संवर तथा निर्जरा हो जाती है। वस्तुतः यही धर्म की कसौटी है।

खबरदार! इसके अतिरिक्त किसी पुत्र, धन, यश, आरोग्य आदि की प्राप्ति पर लक्ष्य नहीं रखना। अन्यथा भारी टोटा भुगतना पड़ेगा जो कि दुःखमय अनन्तानन्त संसार का कारण होगा। यदि जिन पूजन से कुछ पुण्य-बंध भी हो जाय यह फल की आशा कुछ थोड़ी ही है। मात्र पुण्यास्रव पर मस्त मत हो जावो।

द्रव्यानुयोग, करणानुयोग को नहीं समझ कर भोली जनता कह देती है कि सीता जी ने धर्म का फल बहुत बढ़िया पाया। 'अग्निकुण्ड जलमय हो गया। सुदर्शन सेठ के लिये ब्रह्मचर्य पालने से सूली का देव विमान बन गया। चौदस को हिंसा नहीं करने वाला चांडाल गम्भीर सरोवर में डाल दिया गया भी मणिमय सिंहासन पर देवों से पूजित हुआ।'

ऐसा प्रथमानुयोग में लिखा है।

इन कथानकोंको कतिपय व्याख्याता रोचक हाव, भाव--भङ्गी से सुनाकर सुनने वाले श्राता, श्रात्रियों में करुणारस प्रवाहित कर देते हैं, स्वयं भी मुग्ध हो जाते हैं किन्तु आप पाठक थोड़ा न्याय शास्त्र के नियमित कार्य कारण भाव पर लक्ष्य डालिये। मैं तो कहता हूं कि इन लोगों पर यों विघ्न ही क्यों आये ? "पहिले कीचड़ में पैर रखना पीछे स्वच्छ पानी से पग धोना" ऐसा व्यर्थ व्यापार ठलुआ लोगों को ही रुचता है।

आपके विचारानुसार हम कहते हैं कि पहले पाप का उदय आया तो बलवत्तर विघ्न उपस्थित हुआ किन्तु पुनः पुण्य का उदय हो जाने पर वह दूर हो गया। यह कार्य कारण भाव कुछ अंशों में यदि मान भी लिया जाय तो आप उन प्रकरणों के लिये क्या उत्तर सोचेंगे ?

जबकि दण्डकवनमें पांचसौ ५०० मुनि घानीमें पेल दिये गये थे, अकम्पनादि उपसृष्ट मुनियोंकी आवरणी कथा प्रसिद्ध ही है अथवा गजकुमार या पार्श्वनाथ भगवान पर भी घोरतम कष्ट पड़े थे। पांडवों को अत्युष्ण लोहकील या तप्त आभूषणों से पीड़ित किया था। गुरुदत्त मुनि को उपसर्ग हुआ था वे उपसर्ग सहकर भी झटिति मोक्ष को गये। सीता से भी पांच सौ गुने धर्मात्मा शीलव्रती अनेक घोर तपस्वियों का दुःसह या असह्य उपसर्गों करके कदली घात मरण हुआ है। प्रत्येक तीर्थङ्कर के बारे में दस दस मुनि घोर उपसर्गों को सहन कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। द्वादशांग रचना में इसके लिये एक न्यारा ही अन्तकृद्दशांग नाम का आठवां अङ्ग शास्त्र है इनके भावों की पूर्ण शुद्धि से मोक्ष ही होती है। इसी प्रकार दारुण उपसर्गों को जीत कर अनुत्तरों में पैदा होने वाले मुनियों का वर्णन अनु-त्तरौपपादिक नौवें अङ्ग में गूंथा गया है। इनमें उन उपसर्गों का और उस समय के निर्मल परिणामों का विशद वर्णन है। स्वयं विचारो तो सही कि यदि अग्नि में सीता जी जल मरतीं, समाधिमरण पूर्वक भस्म हो जातीं तो समन्तभद्राचार्य जी के धर्म-लक्षणानुसार सीता जी को क्या टोटा पड़ता? तब भी वे स्वर्ग में ही जातीं। अग्नि का पानी बनाकर देवों द्वारा रक्षा हो जाने की दशा में

कर्मों का तीव्र संवर और निर्जरा हो जाने से वञ्चित रह जाने के कारण उलटा सीता जी को भारी घाटा ही उठाना पड़ा। मर जाना कोई अपराध या पाप तो नहीं।

अग्नि परीक्षा के समय खिलाड़ी देखने वालों में बहुत से ऐसे पोंगा लोग भी बैठे थे जो कि सीता जी के जल जाने पर उनको असती कहने के लिये तैय्यार थे किन्तु साथ ही ऐसे विचारशील विद्वानों की भी वहां पर कमी न थी जो कि विघ्न पड़ने पर मृत्यु हो जाने की अवस्था में भी अक्षुण्ण धर्म पालना हो रही समझते थे। नीति शास्त्र में हजारों मूर्खों से एक पण्डित को अच्छा माना गया है। कथानक पद्मपुराण जी में यों लिखा है–

दो देव कहीं केवलज्ञानी के दर्शन को जा रहे थे, मार्ग में उन्हों ने अयोध्या के निकट सीता जी की अग्नि परीक्षा का प्रकरण देखा, ऐसी दशा में एक देव ने अपने मित्र से कहा कि सखे ! तुम इस अवसर पर कुछ चमत्कार दिखा देना, बस इसी वार्तालापानुसार उस देव ने किसी समुद्र से पानी लाकर वहां डाल दिया। देखो तो सही, स्तोताओं ने कितनी छोटी बात पर इतना सङ्गीन मामला खड़ा कर लिया है।

यदि देव वहां होकर नहीं निकलते तो सीता का अग्निदाह हो जाना अनिवार्य था। किस चक्र में पड़े हो ?

आजकल भी और प्रथम भी सैकड़ों वर्षों से विधर्मियों द्वारा मूर्ति खण्डन, मन्दिर ध्वंस, शास्त्र दाह, जैनधर्मात्म पीडन आदि कुकृत्य हो रहे हैं। तीर्थ स्थान छीने जा रहे हैं। जैन सम्मेलन, प्रतिष्ठायें, उत्सव रोक दिये जाते हैं। "न गच्छेत् जैन मन्दिरम्।" ऐसे असत्य अपवाद लगाये जाते हैं, जैन धर्म छोड़ने के लिये वाध्य किया जाता है, विहार रोका जाता है। यदि इनका किसी शक्तिशाली द्वारा निराकरण नहीं कराया जाता है तो क्या धर्म का त्याग कर दें ? कभी नहीं।

विद्वानों को विचारना चाहिये कि तब भी अब भी और आगे भी ठोस व्रतियों, ब्रह्मचारियों पर अनेक विघ्न आते रहे हैं और आवेंगे। असंख्य जीव विघ्नों से सताये हुये मर गये हैं किन्तु उनकी धर्म पालना का फल तत्काल अलौकिक आनन्द और कर्म निर्जरा हो चुकी थी हो रही है और होवेगी। जैनों का कार्य कारण भाव यहां डटा हुआ है। मर्मज्ञ त्यागी विद्वान् इस रहस्य पर शीघ्र हाथ मार देंगे। बाबदूकों की न्यारी बात है।

प्रत्युत सीता जी और सुदर्शन सेठ के दृष्टांतानुसार हम लोगों में यह भ्रम फैल गया कि जो स्त्री या पुरुष अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण न होंगे वे व्यभिचारी हैं। आज कल अनेक स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य को पाल रहे हैं। क्या वे

तीन लाख मन लकड़ी के ज्वल्यमान कुण्ड में तो क्या दस सेर लकड़ी की आग में भी कूद पड़ने की परीक्षा दे सकेंगे ? और यदि वे उसमें झुरस गये तो क्या आप उन को व्यभिचारी ही कहते रहोगे ? अथवा कोई व्यभिचारी, लुच्चा विशेष औषधि लपेट कर या चन्द्रकांत मणि अग्नि में लेकर कूदकर नहीं जले तो क्या उसे ब्रह्मचारी का फतवा दे दोगे ? शीघ्र बोलो न ? सीता को हरते समय रावण ने शरीर न छूकर बड़ी सड़ासी या दासी द्वारा सीता को विमान में नहीं बैठा लिया था किन्तु हाथों से ही पकड़ा होगा, दसों वार राग-युक्त बातें भी कही होंगी, इसी भित्ति पर धोबी चमारों ने अपवाद फैला दिया।

विचार शील भाइयो ! शील के सम्पूर्ण भेद और प्रभेदों का पालन तो चौदहवें गुणस्थान में ही होता है। तेरहवें में भी कुछ त्रुटि रह जाती होगी इस तत्व को साक्षात् मिलकर समझ लेना। ब्रह्मचर्य के अठारह हजार भेदों में से गृहस्थ सीता ने मात्र २७ या ८१ इक्यासी भेद पाले होंगे किन्तु इससे भी अधिक शील भेदों को पालने वाले श्रावक और मुनिराज विघ्नवश अपमृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। प्रथमानुयोग इसका साक्षी है। अतः धर्म की अव्यर्थ कसौटी लौकिक यशः या विभूतियां मिल जाना कथमपि नहीं है। परीक्षापिशाची-ग्रसितों को सम्भल जाना चाहिये

हां, एक बात और है कि हिंसा, झूठ, चोरी में प्रमत्तयोगात् पद लगता है, व्यभिचार में नहीं। इस बात को न समझो तो जाने दो।

कुछ वर्ष पहिले की बात है कि अजमेर में ढड्ढा सेठों का घराना है। सेठानी जी मोतियों की मूल्यवान नथ को उतार कर नाइन से बाल कढ़वा रहीं थीं इनका लाडला बकरी का बच्चा यहां वहां खेल कूद रहा था। बाल बंधवा चुकने के चार घण्टे बाद नथ की याद आई, नाइन के अतिरिक्त वहां कोई भी मनुष्य था ही नहीं। शङ्कावश, नाइन को घर से बुलवाया गया, धमकाया गया, किन्तु भोली नाइन चोरी करने का निषेध करती गई। अन्त में नाइन ने कहा यदि मैं ने नथ चुराई होय तो मेरा इकलौता लड़का पांच दिन में मर जावे, दैवयोग से नापिता का लड़का भी मर गया तब तो सब को यही निश्चय हुआ कि नथ इसी ने चुराई है। आठ दिन बाद वह बकरी का बच्चा भी मर गया। खाल उधेड़ने वाले चमार ने टूटी, पिची तथा मसली हुई नथ लाकर सेठानी को दी कि सेठानी जी! न जाने यह क्या चीज है? ये लो, मेंमने की आंतों में यह फंसी हुई मिली है इसी कारण बकरी का बच्चा मर गया था। परीक्षा देखने के लोलुपी इस दृष्टांत से कुछ शिक्षा लेवें।

धर्म बन्धुओ ! अक्षुण्ण ब्रह्मचारी सुकुमाल (सुकुमार) या सुकौशल को शृगाली और व्याघ्री भक्षण करती रही। यहां तक कि उनका मरण भी हो गया। वहां क्या रक्षक देव ठलुआ काम करने (घास चरने) चले गये थे ? या सीता सुदर्शन के समान इनके पास पुण्यकर्म बंधा हुआ नहीं था ? हम तो पुनः यही कहते हैं कि धर्म पालन का सच्चा फल सुदर्शन और सुकुमाल को हीमिला यदि कोई क्रीड़ासक्त देव इनकी रक्षा कर देते तो ये उपशम श्रेणीमें पाये जा रहे शुक्लध्यान की रक्षा न कर पाते और न एक भवावतारी सर्वार्थसिद्धि के देव हो जाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते थे। इन दो मुनियों ने घोरतम उपसर्ग के उपस्थित हो जाने पर अपने पुरुषार्थ द्वारा अतीन्द्रिय आनन्दानुभव करते हुये अनन्त कर्मों की झटिति निर्जरा कर डाली थी। उपसर्ग निवारण हो जाने की अपेक्षा उपसर्ग सहन का पदस्थ बहुत ऊंचा है। बड़ी कमाई होती है।

तीन पांडवों की शीघ्र मुक्ति विघ्न सहने से ही हुई। यदि युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन मुनिवरों की किसी के द्वारा रक्षा कर दी जाती तो वे और भी दीर्घ काल तक संसारी बने रहते। परीषह सहन करने में भीतरी चिदानन्द रस अधिक प्राप्त होता है। गज कुमार मुनि की रक्षा नहीं हुई

तो क्या हुआ ? यही हुआ कि गज मुनि ध्यानारूढ़ बने रहे और बद्ध कर्मों की विशेष रूप से निर्जरा हुई संवर तो हुआ ही। विवाह करते ही कुछ प्रहरों की अपनी आयुः ज्ञात कर जो तत्काल शीघ्र दीक्षित हो गये और ससुराल वालों के द्वारा किये गये सिर पर सिगड़ी जला देना आदि अनेक उपसर्गों को शांत परिणामों से सहकर प्रथम शुक्ल ध्यान को मांड कर एक भवावतारी सर्वार्थ सिद्धि के अधिकारी बन गये। नमोस्तु गजकुमाराय मुनये।

महाशय जी ! इस पुरुषार्थ की तो थोड़ी प्रशंसा कर दीजिये या अतिशयों ही की तारीफ करना सीखा है। समाधितन्त्र में लिखा है कि—

आत्मदेहांतरज्ञानजनिताह्लादनिर्वृतः ।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानोऽपि न खिद्यते ॥३५॥

इसका ऐदंपर्य यह है कि आत्मा और शरीर के भेद ज्ञान से उत्पन्न हुए सुख से सर्वांग निष्णात हो रहा मुनि उपसर्ग या घोर दुष्कर्मों के फलों को भोगता हुआ भी तपश्चरण द्वारा स्वल्प भी खेद को प्राप्त नहीं होता है। कौन कहता है कि उपसर्ग के अवसर पर मुनि को दुःख हो रहा है प्राज्ञ जी ! वे साधु तो परम अतीन्द्रिय आत्मीय आनन्द में निमग्न हो रहे हैं। न्यारे पुद्गल को कुछ भी होय। उपसर्गों से डरकर नहीं, प्रत्युत उपसर्गोंको सहकर ही अनेकानेक मुनि

मोक्ष को गये हैं। भावों की शुद्धि पर लक्ष्य रक्खो।

सुनिये ! ढाई द्वीप से ही मोक्ष जाते हैं पैंतालीस ४५ लाख लम्बे चौड़े गोल इस मनुष्य लोक से सात राजू ऊपर सिद्ध क्षेत्र में सर्वत्र अनन्तानन्त सिद्ध ठसाठस विराजमान हैं ढाई द्वीप में भी जहां निराकुल, निरापद होकर मुनि ध्यान कर सकते हैं उस कर्म भूमि की अपेक्षा अठारह गुना स्थान पर्वत नदियों कुलाचल, जघन्य भोगभूमि, मध्यम भोग-भूमि, उत्तम भोग भूमि, कुभोग भूमि, म्लेच्छ खण्ड, सरोवर, क्षुद्र नदियों, खेत, नगर, गांव आदि ने घेर रक्खा है। कुलाचल, महा नदियों, भोग भूमियों, मेरु पर्वत, कुभोग भूमि आदि के ऊपर सिद्ध क्षेत्र में तो घोर विघ्न पूर्वक संहरण दशा से ही मुनियों ने मोक्ष प्राप्ति की है और उस ढाई द्वीप के अठारहवें भाग उचित स्थल में भी अनन्तानन्त निर्ग्रंथों ने निठुर घोर उपसर्ग सहे हैं। जैन सिद्धांत की वसंत वायु किधर बह रही है ?

श्री राजवार्तिक में उपसर्ग सहकर अन्तकृत् केवली सिद्धों की संख्या अनन्तानन्त मानी है। दस, बीस की कथा से क्या पूरा पड़े ? सच्चे जैन बन्धुओ ! अपने २ धर्म पर डटे रहो, धर्मात्मा को दुःख भी सुख स्वरूप मालूम होता है। वस्तुतः धर्मपालन सुखमय ही तो है। उमा स्वामी भगवान् ने "दुःखमेव वा" इस सूत्र द्वारा हिंसा झूठ आदि अधर्मों

को दुःख रूप ही कहा है। पीछे सुख और चारित्र गुण का विवेक विचारते हुये टीकाकारोंने 'दुःखके कारण या दुःख के कारण के भी कारण हिंसादिक हैं' यों व्याख्या की है। किन्तु मूल सूत्रार्थ बड़ा अच्छा जचता है कि सभी पाप दुःखमय ही हैं।

'हिंसा, दगाबाजी, विश्वासघात, कुशील इन कुकर्मों से भविष्य में दुःख होगा।' इसकी अपेक्षा मुझे यह अध्यात्म ग्रन्थों की व्याख्या बड़ी अच्छी लगती है कि ये सब पाप तत्काल दुःख रूप ही हैं।

इसी प्रकार क्षमा, ब्रह्मचर्य, तपश्चरण, सम्यग्दर्शन, जिनार्चन इन धर्म पोषक क्रियाओं से (भविष्य में न जाने कब) सुख होगा। इस वाक्य के स्थान पर "ये उक्त क्रियायें सुख स्वरूप ही हैं— धर्मः सुखमेव" यह शास्त्र वाक्य मुझे पुष्ट प्रतीत होता है। जबकि आत्मा में ज्ञान, सुख, वीर्य, चेतना, अस्तित्व आदि सभी गुणों का अभेद हो रहा है। प्रवचनसार में—

"सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो यदेव दाणमसि
सिद्धोपि तहा णाणं सुहं च लोगे तहा देवो ॥३८॥"

इस गाथाके अनुसार इसी सिद्धांत को पुष्ट किया गया है। तथा

"सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणं पि सिद्ध मुवदेशो,

ते देइ वेदणङ्का रमन्ति विषयेसु रम्भेसु" ॥७१॥

इस गाथा द्वारा इन्द्रियजन्य सुखों को दुःख रूप ही स्वीकार किया है।

ऐसी दशा में निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति के सिवाय और किस क्षणिक सुख की प्राप्ति की अभिलाषा में पड़े हो अन्तरदृष्टि खोलो, ज्ञानदृष्टि को पसारो।

चिन्तामणि को पाकर भी क्यों भड़कते हुये कांच से बदला करते हो। सेवा करने वाले सच्चे-स्वयं-सेवक जैसे अपने कर्तव्य में दुःखों से नहीं घवड़ाते हैं और धन, मान की प्राप्ति आदि क्षणिक सुखों की भी कांक्षायें नहीं रखते हैं। इनसे असंख्य गुणी निःकाक्षणा धार्मिकों को करनी पड़ती है। चक्रवर्ती या तीर्थङ्कर भी इस लौकिक विभूति को लात मारकर वैराग्य धारण कर लेते हैं। इन्द्र अहमिंद्र भी वैराग्य नामक धर्म को पालने के लिये मनुष्य होकर तपः द्वारा कर्म–क्षय करमे की अभिलाषायें रखते हैं। धम से अनपेत न्यायमार्ग बलवान है।

दुक्खक्खउ कम्मक्खउ समाहिमरणं च वोहिलाहो य।

दुःखों का क्षय हो (लौकिक सुखोंका भी न होना) कर्मों का क्षय हो, तत्वज्ञान की प्राप्ति हो, समाधि पूर्वक मरण हो। ये इच्छायें बुरी नहीं हैं। हां लौकिक सुखों की अभिलाषायें करना बन्ध का बीज है। धर्म सेवन का

फल यदि रति अरतिमय स्वर्गादि माना जाय तो कभी मोक्ष हो नहीं सकगी क्योंकि द्रव्य-कर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्मका सन्तान-बद्ध तांता बढ़ता ही चला जायेगा ठीक बात तो यह है कि धर्म सेवन का फल अलौकिक आनन्द में मग्न हो जाना है। जो कि स्वयं-वेद्य है दृष्टान्तों से नहीं समझाया जा सकता है। गम्भीर अनुभव करो।

"उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणम्'

धर्म-पालनेमें हुये आत्मीय आनन्दानुभव को समझाने में न नय चलती है और न प्रमाण का ही अधिकार है।

जिसका सत्य, शील, क्षमा, ब्रह्मचर्य, तपश्चरण इन धर्मों के पालने में तत्काल समरस आनन्दोद्गम नहीं होता है उसको भोगभूमि या देवगतिके क्षणिक सुखोंकी अभि-लाषा से अथवा ऐसे ही अन्य प्रलोभनों के लिये धर्मसेवन नहीं करना चाहिये। अन्यथा भारी घाटेमें रहोगे 'तुम धर्मका रहस्य रत्तीभर भी नहीं जानते हो, आचार्य महाराज आपको दोनों लोकों का अविनाशी सुख देना चाहते हैं।

जो माता अनेक कष्टों को सहकर स्वपुत्र का पालन पोषण इस लिये करती है कि यह मेरा लड़का बड़ा होकर मेरे लिये उत्तम भोजन देगा, गहना बनवायेगा, कमाई ला कर सौंपेगा, वह पुरन्ध्रीपनका अणुमात्र सुख नहीं पह-

चानती है। यदि माताको पुत्र के प्रति अमित वात्सल्य करने में उक्त अभिलाषायें लक्ष्य होवें, तो गाय अपने बच्चों से इतना अनुराग न कर पातीं, चिड़िया अपनी सन्तान से प्रीति न निवाहती, बन्दरिया अपने बच्चे को दिन रात छाती से न चिपटाये फिरती यहां तक कि वानरी मोहवश मरे बच्चे को भी दो चार दिन तक नहीं लटकाये डोलती क्योंकि पशु पक्षियों को भावी धन या गहनों की स्तोक भी प्रेप्सा नहीं है।

वस्तुतः माता के पास स्वकीय औरस पुत्र के लिये नैसर्गिक अगाध स्नेह का समुद्र भरा हुवा है। उस स्वाभाविक प्रेम-स्रोत के सन्मुख धन आदिक की अभिलाषायें लात मारने के योग्य हैं। अस्तु, यहां मोही माता पुत्रों में लौकिक सुख की प्राप्ति का भाव सम्भव भी हो सकता है किन्तु वीतराग के धर्म सेवन में तो अणुमात्र भी इन्द्रियजन्य सुखों की अभिलाषा रखना सर्वथा निषिद्ध है आज अनेक कुपित स्त्री पुरुष दूसरों को प्रभूत गालियां देते हैं, शाप देते हैं। प्रसन्न माता, पिता, गुरुजन अपनी संतान को आशीर्वाद देते हैं। सुभद्रा और उत्तरा ने अभिमन्यु को जयाशिषः दी थी। गायें अपनी संतान की प्रसन्नता (खैर) मनाती हैं। किन्तु उपद्रुत स्थानों पर किये गये नर संहार या कुर्बानी के दिन वध की जा रही गायों पर

शुभ कामनाओं का क्या प्रभाव पड़ा ? बकरे की मां अपने बच्चे को चिरञ्जीव होने की आशिषः प्रदान करती रहती है, परन्तु बकरा ईद के दिन अथवा शक्ति देवी के सामने यूप से बंधे हुये पशु की बलि पर उन दुआओं का क्या असर पड़ा ? अतः कहना पड़ता है कि अपनी, परकी इष्ट अनिष्टार्थ चिंताओं को छोड़ो। तभी तो मुनि महाराज किसी को लौकिक अशीष नहीं देते हैं मात्र धर्म वृद्धि कह देते हैं वाग् ऋद्धि धारी साधु जैसा कह दें वैसा नीरोगता, पुत्र प्राप्ति, विजय अर्थ लाभ हो ही जाय, इसमें रागद्वेष बढ़ता है मुनि को अपनी तपस्या का व्यय करना पड़ता है। यों आशीर्वाद देना बड़ा महंगा पड़ता है जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि, जो जहां जैसा जिस प्रकार होनहार है उसको इन्द्र, अहमिन्द्र, जिनेन्द्र भी नहीं चलायमान कर सकते हैं। जीव और पुद्गलों की कारणोंके अनुसार हो रही परिणतियों पर तुम क्या कर सकोगे ? सामुदायिक या प्रत्येक जीव की पुण्य पाप करनी को चितारो। हां अपनी शक्ति को नहीं छिपा कर मात्र दया करने का यथाचित पुरुषार्थ कर डालो। तुम्हारे ऊपर यदि मार पीट हनन का प्रकरण उपस्थित हो जाय तो यथाशक्ति न्यायोचित विरोध करते हुये आप समाधिमरण करने के लिये कटिबद्ध रहिये। धर्म के सिवाय

जैनों का आधुनिक कोई मण्डल रक्षक नहीं दीख रहा है, संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हो जाना ही जीव आत्मा का परम हित है। यह शरीर धर्म का साधन है। स्वाध्याय उपवास, कायोत्सर्ग ध्यान, गुप्तियां, सामायिक आदि धर्म इस शरीर से ही पलते हैं। अतः छोटे हेठे कष्टों पर झट समाधिमरण करलेना उचित नहीं है। हां, आयुके अन्त हो जानेका निर्णय करचुकनेपर द्विविध संन्यास लेनेमें आलस्य भी नहीं करा। बढ़िया समाधि मरण हो जाने से सात आठ भव में साधक जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इन्द्रिय विषय, कषाय, उपभोग, शरीर, परिग्रहों में उत्कट वैराग्य होना चाहिये।

श्री देवनन्दी आचार्य ने लिखा है कि—

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात्॥

इन्द्रिय-जन्य भोगों में कोई ऐसा तत्व नहीं है जोकि आत्मा का कल्याण करने वाला होय, तो भी यह अज्ञानी जीव श्वास्थिवत् अज्ञान से उनमें रम रहा है।

यह जगत् भी कैसा भोला भाला है, यह किसी भी बात पर लट्टू हो जाता है। रोटी के टुकड़े पर झगड़ रहे पिसनहारी के चार लड़कों को देखकर निस्सन्तान महारानी जी का चित्त ईर्ष्यावश कलपता है कि यदि ये मेरे बच्चे

होते तो मैं इनको दिन रात आंखों में छापे रखती इसी तरह पिसनहारी भी रानी के गहने, कपड़े, भोगों को देखकर ललचाती रहती है। आचार्योंने ऐसे भोगों को धिक्कारा है। कथानक के भीतरी ज्ञान पर लक्ष्य डालो ऊपरी वाच्यार्थ पर ही नहीं। जैसे कि दशलक्षण में तत्वार्थ सूत्र की पूजा करने वाले भक्त जन प्रत्येक अध्याय पर अर्घ्य चढ़ाते हैं। प्रत्येक सूत्र की भी पूजा करने के भाव हैं। यों "नारका नित्या-शुभतरलेश्यापरिणाम, नारक सम्मूर्छिनो, काय-प्रवीचारा, पृथिव्यप्तेजोवायु, तत्प्रदोषनिन्हव" आदि सूत्रों के वाच्यार्थों का आदर नहीं करते हैं। हां इन सूत्रों के लक्ष्यार्थ ज्ञान की अष्ट द्रव्य से पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं। फलितार्थ पर पहुंचिये। कथा ग्रन्थों का स्वाध्याय करने वाले स्त्री पुरुष जन भी चाहे किसी भी बात पर बिना सोचे समझे प्रसन्न हो जाते हैं और चाहे किसी भी कथानक पर कुपित हो जाते हैं इसकी चिकित्सा क्या करें?

विचारो तो सही कि भरत चक्रवर्ती ने क्या खोटा कार्य किया था जिससे कि उनका अरबों खरबों मनुष्यों में अपमान हुआ। आप पाठक भी भरत चक्रवर्ती को क्यों घृणा की दृष्टि से देखते हैं? तथा बाहुबलि ने कौन सा बढ़िया काम किया था? जिससे आप दृष्टियुद्ध, जल-

युद्ध और मल्लयुद्ध में चक्रवर्ती को जीतने वाले बाहुबली पर लट्टू हो जाते हैं ? वस्तुतः (आखिर) भरत जी उनके बड़े भाई थे, चक्रवर्ती भी थे, छोटे भाई बाहुबलि उनको नमस्कार कर लेते तो क्या बिगड़ जाता ? देखो बाहुबलि जी को एक वर्ष घोर परिश्रम करना पड़ा तब कहीं केवलज्ञान उपजा और भरत चक्रवर्ती ने केवल सात, आठ अन्तर्मुहूर्त्तों में ही केवलज्ञान विभूति को पा लिया। बात यह है कि उनका पुण्य, पाप जो कुछ भी होय, हम लोग व्यर्थ रागद्वेष के पचड़ों में पड़कर चाहे जिसको उल्टा सीधा उत्तीर्ण पत्र दे देते हैं। ऐसी आदतें पड़ी हुई हैं जिनसे कि हम लाचार हैं।

प्रद्युम्नकुमार ने अपने बाबा और ताऊ तथा नारायण पिता को भी परास्त कर दिया। इसमें आप प्रद्युम्नकुमार पर क्यों प्रसन्न हो रहे हो ? आपको उनके बाबा, ताऊ, पिता, पर घृणा दृष्टि डालने का कोई अधिकार नहीं है। क्या यह प्रद्युम्न जी ने अच्छा किया ? आप ही उत्तर दो ? प्रद्युम्न लड़का था पीछे मोक्ष गया, ऐसे व्यर्थ के पक्षपात न किया करो। अपनी निर्बलताओं का वशीकरण करो। लब्धांक देनेवाले परीक्षकको विचारक और निष्पक्ष होना चाहिये।

लव और अंकुश ने अपने पिता और चाचा को

हैरान कर दिया बचाकर शस्त्र चलाने पर भी लक्ष्मण के घोटू में भारी चोट आई। शलाका पुरुष रामचन्द्र लक्ष्मण भी यों विचारने लगे कि— वस्तुतः ये कुमार ही बलभद्र नारायण हैं हम तो नाम मात्र हैं, क्यों जी ? यह क्या कुमारों का शुभ कर्तव्य था ? आप तादात्त्विक लव, कुश, छोकरों पर प्रसन्न पर प्रसन्न होते जाते हैं। बस इस ही प्रकार के व्यर्थ परीक्षा-फल (रिजल्ट) देने के सङ्कल्प विकल्पों द्वारा यह जीव प्रतिक्षण रागद्वेषों में फंसा रहता है, और हर्ष विषाद द्वारा कर्मबंध किया करता है बाजार में जाकर किसी सजी हुई दुकान को अच्छा और फूहड़ दुकान को झट बुरा कह देता है। यह नहीं विचारता है कि इस रागद्वेष परणति से मेरी आत्मा ने कितने दुःकर्मों को बांध लिया है। कर्म बन्ध के निमित्तों का सूक्ष्म गवेषण कीजिये।

आचार्य ने समाधितन्त्र में लिखा है—

"आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात् किंचित् वाक्कायाभ्यामतत्परः॥"

आत्मज्ञान के अतिरिक्त किसी भी कार्य को देर तक विचार में मत लाओ। आत्मा का शुद्ध संचेतन होते रहना ही परम धर्म है। क्षमा आदि को धारते समय भी आत्म-सचेतन हो रहा है। तभी तो दशलक्षण की जयमालाओं

में— "ओं ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तमक्षमाधर्मांगाय नमः" "ओं ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तममार्दवधर्मांगाय नमः" इन मन्त्रों के द्वारा उत्तम क्षमा, मार्दव, ब्रह्मचर्य आदि धर्मों को परम ब्रह्म यानी शुद्ध सिद्ध परमात्मा स्वरूप कहा है। अष्टकर्म निर्मुक्त सिद्ध अवस्था में जिनार्चन, मुनिदान, पुष्पांजलि आदि व्रत धारण, इन्द्रिय विजय, कषाय निग्रह, समिति पालन, परीषह जय और धर्म्य शुक्लध्यान आदि परिणाम नहीं हैं। ये परिणतियां संसार अवस्था की हैं किन्तु उत्तम क्षमा, अहिंसा आदि धर्म वहां विद्यमान हैं। श्री समन्तभद्राचार्य जी ने भी "अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं" अहिंसा धर्म को परम ब्रह्म स्वरूप कहा है। प्रवचनसार में भी—

"जो णिहद मोह दिट्ठी आगम कुसलो विराग चरियह्मि।

अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मोत्ति विसेसिदो समणो ॥९२॥"

इस गाथा द्वारा यही बात कही गई है।

"ध्यानकोटि समा क्षमा"

करोड़ ध्यान के समान एक क्षमा है। ध्यान करना संसार है क्षमा सिद्ध स्वरूप है। तीव्र क्रोधको आप एक घण्टे तक करने में ही संतप्त हो जांयगे जबकि क्षमा को असंख्य वर्षों तक करके भी आनन्दामृत गटकते रहते हैं।

जो धर्म उस परमोत्कृष्ट मोक्ष को प्राप्त करा सकता है या शुद्धात्म स्वरूप ही है। इसका फल पुण्य बंध मानना एक प्रकार धर्म की अवज्ञा (तौहीन) करना है। कुली (मजूर) का कार्य विद्वान् से कराना चाहते हो। भोले, अज्ञानी जीव चाहे कुछ भी कहें सुनें किन्तु मनस्वी मुनि-राज ऐसी अवज्ञा को सहन नहीं कर सकते हैं चाहे कैसा भी दुःख पड़े, उपसर्ग आ जाओ, क्लेश पड़ो वे अपने धर्म्य कर्तव्य से च्युत नहीं होते हैं। उस बाहर के लोगों को दीख रही क्लेशमयी अवस्था में जैन मुनि अपनी सुखमय स्वात्मानुभूति में निमग्न हो रहे हैं। दुःखों को चलाकर मत बुलाओ किन्तु आये हुये दुःखों से घबड़ाओ भी नहीं। आचार्यों ने लिखा है कि—

"अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद् यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः॥"

इसका अभिप्राय यह है कि दुःखरहित अवस्था में धारण कर लिया ज्ञान पुनः दुःख उपस्थित हो जाने पर झट नष्ट हो जाता है तिस कारण अपनी शक्ति अनुसार दुःखों करके आत्मा को भावित करते रहो। घोर तपश्चरण द्वारा ही आत्मा के अन्तस्तल में छिपे रहे गुण प्रगट होते हैं।

अतः घोर परीषह के समय भी उस मुनि की ध्याने-

कनानता पर ही लट्टू हो जाओ जिससे कि वे मुनि दुःखों का वेदन न करते हुये भी अपने धर्मपर सुमेरुपर्वतवत् दृढ़ रह कर पुरुषार्थ द्वारा कर्मों को काट रहे हैं। प्रवचनसार में ऐसे ज्ञान को सुखस्वरूप ही पुष्ट किया है।

जादं सयं समत्तं णाणमणन्तत्थ वित्थदं विमलं।
रहियं तु ओग्गहदिहिं सुहंति एगं तियं भणियम्॥

इस गाथामें शुद्धज्ञान को एकान्त सुखस्वरूप ही सिद्ध किया है एक अर्थ में अंश उपांशों को जान रहे अविरुद्ध अनेक प्रमाण ज्ञानों का पिण्ड ही तो ध्यान है।

सीता के ब्रह्मचर्य से आप अग्नि का जलमय हो जाना मानते हैं। विशल्या के स्नान जलसे हज़ारों रोगों का दूर हो जाना स्वीकार करते हो। मैं तो कहता हूं कि इन अल्प सार थोथे राग-द्वेष के प्रकरणों या पुण्य फलपर न्यौछावर न हो बैठना, किन्तु सीताकी उस दशा पर मुग्ध हो जाओ जिस समय कि वह अपने ब्रह्मचर्य पर दृढ़ रहना चिन्तती हुई शुद्धात्मा का ध्यान कर रही समाधि-पूर्वक अग्निकुण्ड में सोत्साह घुस पड़ी थी। अथवा अग्नि परीक्षा के पश्चात् रामचन्द्र की प्रार्थना करने पर भी घर न जाकर संसार के शरीर भोगों से विरक्त होकर सीता ने झटिति केश लोंचकर आर्यिका की दीक्षा ले ली थी। यह धर्म का फल अग्नि परीक्षा से बहुत बड़ा है।

विशल्या के उस धर्म को चितार कर प्रसन्न होना कि वह सम्राट की लड़की जितेन्द्रिय होकर तीन हज़ार वर्ष तक उचित व्रत पालती हुई अजगर सर्प के मुख में ग्रीवा तक निगली जा चुकी थी और ढूंढ़ते ढूंढ़ते उस मरते समय आये तथा सर्प को मारने के लिये उद्यत हुवे अपने पिता चक्रवर्ती को सर्प पर दया करने की प्रार्थना कर रही थी कण्ठगत प्राण होते समय उस दया धर्म को पाल रही विशल्या की पूर्व आत्मा परम सुखिनी थी उस धर्म के द्वारा मार्ग चलते हुवे उसको यह तुच्छ अतिशय भी प्राप्त हो गया था कि उसके स्नान जल से अनेक रोगियों को लाभ हुआ। लक्ष्मण का शक्तिबाण भी उसी के प्रभाव से निकला था। विज्ञजन उस लौकिक अतिशय की क्या प्रशंसा की जा सकती है जो कि विशल्या की युवावस्था में ही अत्यल्प रह जाता है हां जन्म, जरा, मृत्यु रोगों का विनाश करने वाला धर्म का अतिशय वस्तुतः प्रशंसनीय है "धर्माय तस्मै नमः"। ऐसे धर्म को हम उसकी प्राप्ति के लिये त्रियोग से नमस्कार करते हैं। राग—द्वेष पूर्ण चेष्टाओं को फैंक कर ही वीतराग विज्ञान सुखमय धर्म को देख पाओगे।

अतिशयधारी अनेक द्रव्य लिंगी मुनि भाव शुद्धि के बिना अनन्तवार ग्रैवेयक जा चुके हैं। हम आप भी जा

चुके होंगे। हां भाव विशुद्ध हो जांय तो बत्तीस बार से अधिक मुनिलिंग नहीं धारण करना पड़े। मुनिधर्म से बत्तीसवें बारमें मोक्ष हो ही जाय। भले ही सात दिनों तक कदाचित् तीन लोकमें कोई भी उपशम सम्यक्त्वी न पाया जाय किन्तु एक जीव के प्रथमोपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व असंख्यातवार हो सकते हैं। पुनः मोक्ष हो ही जायगी। उपशम श्रेणी चार बार हो सकती है किसीको नहीं भी होय। धर्म तो आत्माका तदात्मक स्वभाव है। धर्मपर आत्माका अनादि अनन्त अधिकार है जब विभाव रूप अनन्तानुबन्धी कषाय के संस्कार अनन्त भव तक चलते रहते हैं तबउससे भी अधिक संस्कार गहरा स्वभाव मानेगये धर्म का घुस जाता है तभी तो एक बार हुये सम्यग्दर्शनका स्रोत आत्मामें जब जग गया तब कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनकाल में अवश्य सम्यक्त्व को उपजा कर मोक्ष में धर ही देवेगा, पूर्व पर्याय नष्ट होती है तब उत्तर पर्याय को अपना चार्ज सम्भाल देती है तभी सस्कार टिक पाता है काल क्रम से ये संस्कार धुंधले भी होते जाते हैं यों अनेक संस्कार मर जाते हैं। किसी २ धारणा ज्ञान की वासनायें तो प्रतिदिन ऐसी होती हैं कि पांच मिनट या घण्टे दो घण्टे तक के उत्तरवर्ती असंख्य ज्ञानों को चार्ज सम्भाल कर ही झट नष्ट हो जाती हैं। कोई संस्कार

पुरुषार्थ से टिकाऊ कर दिया जाता है। छात्र व्याकरण घोकते हैं, गोम्मटसार की गाथायें रटते हैं। आस्ताम्।

अनेक मोही जीवों ने धर्म पालन को एक खिलवाड़ समझ रक्खा है। मोक्ष-प्रद धर्म का ऐसा जघन्य उपहास किया है कि यदि वह धर्म हमारे लौकिक इच्छानुसार प्रयोजनों को नहीं साधता है तो ऐसे धर्म की कल क्या आज ही और अभी हम अश्रद्धा करने के लिये तैयार खड़े हैं। वे मिथ्यादृष्टि जीव समझ बैठते हैं कि जिन-पूजन, पानी छानना, रात्रि-भोजन त्याग, अभक्ष्य परित्याग आदि व्यवहार धर्मों में क्या रक्खा है? आनद से रहो और आनंद से रहने दो, ऐसे नववायु में रहनेवाले नवयुवकों के प्रति आचार्यों का यही आदेश है, कि— बन्धुओ! विचार करो, उक्त देवदर्शन, जिनार्चा आदि धर्म पालने में ही ठोस आनन्द भरा हुआ है, अधार्मिक परिणतियों में नहीं। व्यवहार धर्म से ही निश्चय धर्म की प्राप्ति होगी। मार्ग यही है। अन्य तो सब विडम्बना है। अन्तरात्मा पर लक्ष्य दीजिये।

आजकल निकृष्ट काल में भी स्वार्थ त्याग, परोपकार, जितेन्द्रियत्व, मितव्यय, संतोष, क्षमा, धैर्य आदि धर्मांगों की महती प्रशंसा है। देश नेताओं, माताओं, स्वयं सेवकों के स्वल्प निःस्वार्थ धर्म्य सेवाओं पर दृष्टि डालिये, आप

को स्वार्थी, हिंसक, इन्द्रिय लोलुप, लोभी, जीवों की अपेक्षा इनमें विशेष पवित्रता, निर्मलता और विलक्षण आनन्द-अनुभव प्रतीत होगा, व्यर्थ में किसी अच्छी वस्तु का निरादर करना ठीक नहीं। ४५ वर्ष पहले की बात है जबकि कुछ मन-चले लोगों ने देश भक्तों की यों हँसी उड़ाई थी कि आप लोग विदेशी घड़ी नहीं लगाया करें, किन्तु पानी से भरी डेढ़ मन की बोझ वाली नांद को पीठ पर सतत बांधे रहा करें जिसमें कि एक छोटे छेद वाला कटोरा पड़ा रहे, क्योंकि पहले भारत में पहरेदार इसी पद्धति से घण्टा बजाया करते थे।

इसी प्रकार न्याय शास्त्र और व्याकरण शास्त्र पढ़ने वालों की भी तेली का बैल, चिल्लाता हुवा मेंढ़ा आदि दृष्टांतों द्वारा खिल्लियां उड़ाई जाती थीं किन्तु ये सब मूर्खता के युग अब नहीं रहे हैं। विचारवान् परीक्षक उक्त उपहासों से नहीं घबड़ा कर बहुत कुछ आगे बढ़ गये हैं। और अपना ध्येय भी प्राप्त कर लिया है। स्वराज्य मिल गया है। साम्राज्य भी मानवों को ही प्राप्य है।

मूढ़ जीव अष्टकर्मों को नाश करने की सामर्थ्य वाले धर्म से नौकरी लग जाना आदि तुच्छ असाधनीय प्रयोजनों को नहीं सधता हुआ देखकर झट धर्म से अरुचि

कर बैठते हैं जैसे कि अमूल्य रत्न या पारस पत्थरी को देकर यदि कूँजड़ी बेर मोल नहीं देती है, तो वह अज्ञानी बालक या रत्न पारस पत्थर को शीघ्र फैंकने के लिये आतुर हो जाता है। हम कहां तक कहें मूर्ख जनता ने नमस्कार मन्त्र का ऐसा दुरुपयोग करना विचार लिया है कि यदि पाखाना दूर है और दीर्घ शङ्का का वेग हो रहा है तो वे कुछ देर तक मल रुका रहने के लिये मन्त्र का चमत्कार अजमाना चाहते हैं। कभी २ मलरुद्ध अवस्था में मल निस्सरण के लिये भी उनकी ऐसी नीयत हो जाती है। पाचन या रेचन गोली के स्थान पर मन्त्र को बैठाना चाहते हैं सो भी तब, जबकि वह उक्त दोनों काम करदे। क्या कहें आप तो आप ही हैं।

लोगों ने ऐसी ऊद उठा रक्खी है कि यदि आज सिनेमा जाने के लिये आध घण्टे की देर हो गई है तो नमस्कार मन्त्र बोल कर मन्त्र द्वारा यह फल हो जाना चाहते हैं कि या तो आध घण्टे के लिये सिनेमा बिगड़ जावे या रील चलाने वाला बीमार हो जावे और हम जब आध घण्टे बाद पहुंचें तब अवश्य ठीक हो जावे। प्रयोजन यह है कि हमारे पहुंच चुकने पर सिनेमा का प्रारंभ होवे। भले ही अन्य बीसों मनुष्य मन्त्र पढ़कर ठीक समय पर पहुंच चुके हों इन्हें उनकी परवा नहीं है

मन्त्र से चाहे जो कुछ काम निकालना ही जो ठहरा।

भाइयो! ये मन्त्र बोलने वाले स्वार्थी पुरुष शास्त्र सुनने के लिये कभी ऐसा विचार नहीं करते हैं कि हे भगवन् आठ बजे होने वाले शास्त्र, व्याख्यान, या पूजन हमारे पहुंचने पर ही प्रारम्भ होवें, प्रथम तो यह धार्मिक कार्यों में योग ही नहीं देते और कदाचित् पण्डित जी के कहने से टरमरायें भी तो शुभ कार्यों में वे यही देखते रहते हैं कि आधा पौन घण्टा शास्त्र बंच जाने दो तब पहुंचेंगे हाजिरी तो लग ही जावेगी। कौन घण्टे भर तक वहां मन मार कर बैठा रहे। मन्दिर जी में तो हमारा पांच मिनट में ही जी ऊब जाता है इत्यादि।

इसी प्रकार मुकद्दमा जीत जाना, बीमारी दूर हो जाना, बीजक में नफा होना, स्वप्न में अफीम का अङ्क दीख जाना आदि प्रयोजनों में भी इस नमस्कार मन्त्र को अव्यर्थ कार्यकारी देखना चाहते हैं। यदि इन इन्द्रिय-लोलुप, जीवों का अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ तो ये मूर्खराज उसी समय नमस्कार मन्त्र की भर पेट निंदा, अश्रद्धा, घृणा करना शुरू कर देते हैं। "कषायभावान् धिक्"

भाइयो! मत्र पर आप दोष क्यों मढ़ते हैं? लौकिक कारणों से भी तो तुम्हारे कतिपय कार्य नहीं सध पाते हैं। दवाइयां फेल हो जाती हैं औपरेशन उलटे

पड़ जाते हैं, व्यापार में हानि उठाते हो। किसी रईस पुरुष को स्वल्प गर्मी, सर्दी का प्रकरण मिल जाने पर झट ज्वर खांसी हो जाती है किन्तु निर्धन मजूर या पशु-पक्षियों को दिन रात शीत उष्ण बाधायें सहनी पड़ती हैं वे नीरोग बने रहते हैं इसका कारण क्या है क्या कभी तुमने विचारा ? बहिरंग कार्य कारण भाव पर मत गिर पड़ो। अपने दोष-पूर्ण मन को देखो उसमें कितना मैला भरा हुआ है दुष्कर्म तो अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उन्हें देखना भी कौन चाहता है ? अन्तरात्मा बनकर देखो।

कतिपय मन्द बुद्धियों ने यहां बुद्धूपन चांदनगांव के श्री महावीर स्वामी या अपने २ समीपवर्ती अतिशय क्षेत्रों की साधना में भी स्वीकार कर लिया है। अनेक संसारी जीव रागद्वेषवर्द्धक जघन्य इच्छायें (मुरादें) लेकर भारतव्यापी कीर्तिधारी सातिशय महावीर जी के दर्शनार्थ, पूजनार्थ, जाते हैं। कोई घर बैठे ही बोली बोल देते हैं या वहां छत्रादि चढ़ाते हैं। यदि उनकी आपकें या माँगें पूरी हो गईं (क्योंकि आप महावीरस्वामी जी से कई बार मतलब गांठ चुके हैं) तब तो ठीक है नहीं तो सौवें वार प्रयोजन-सिद्धि नहीं होने पर झटिति तोता-चश्म होकर तत्काल अतिशयाभाव का टीका (रिजल्ट) महावीर जी के मत्थे मढ़ देते हैं। जैन धर्मानभिज्ञ अज्ञ शिरोमणियो !

यह मिथ्यात्व-पूर्ण काठ की हांडी कब तक टिकेगी ? विश्व को हड़पने वाले आशागर्त के धारी अभिलाषुकों की इच्छायें कहां तक पूरी हो जा सकेंगी ? याद रक्खो ! त्रिलोक पूज्य, जगदुद्धारक श्री महावीर जिनेन्द्र देव के ऊपर किसी भी प्रकार की त्रुटि लगाने का तुमको कोई अधिकार नहीं है। छोटा मुंह बड़ी बात न कहो।

आपको समझाने के लिये मुझे ही आराध्य वीर प्रभु के लिये निषेध रूप से कुछ अविनय के शब्द लिखने पड़े इसका मुझे भृशं स्वयं अनुताप हो रहा है। वर की लिप्सा से तीव्र रागद्वेषी हो रहा मोही जीव ऐसा भला मनुष्य कहां है जो बिना फटकार या ठोकर खाये सच्चे मार्ग पर आ जावे। अच्छा तो सुनो, सुबह का भूला यदि सायं तक भी घर आ जाय तो वह अधिक भूल में नहीं माना जाता है।

सुनिये, आज कल ये सब जैन महावीर स्वामी के अनुयायी हैं। एक जिनधर्मी का उपकार करना अन्य हजारों अजैनों की सहायता करने से अच्छा है ऐसा श्रावकाचारों में वर्णन है—"वरमेकोप्युपकृतो जैनो नान्ये सहस्रशः।" बोलो आपने सशक्त दशा में कितने जैनों को पढ़ाया ? आहार, आजीविका, औषधि दान दिया अथवा अन्य और कोई सहायता दी ? या भावना की।

यदि नहीं तो महावीर जी की साधना करने का तुम को क्या अधिकार है ? यदि समर्थ होकर भी आप किसी पिता के पुत्रों को लाभ नहीं पहुंचा सकते हो तो उस पिता से भी कोई आशा न रक्खें। पिता से गुरु और गुरु से अर्हत् परमेष्ठी बहुत बड़े माने गये हैं।

वीर सेवको ! धृष्टता को कृतज्ञता से बदल लो, सभी जीवों की ओर विशेषतः सधर्मा जैनों को अपनी सेवाओं से भरपूर करदो। भरत चक्रवर्ती ने अपने सधर्मी भाइयों को पुष्कल द्रव्य दिया, सन्मान दिया, धर्मात्माओं की सहायता करने से अपने प्रभुत्व को सफल समझा। अपने भाव उदार रक्खो, भगवान भी तुम्हारे साथ हैं। निर्दोष का निर्दोष के साथ मेल मिल जाता है।

वस्तुतः निमित्त नैमित्तिक भाव ऐसा है कि श्री महावीर स्वामी के नाम कीर्तन, दर्शन, पूजन, उपकरण चढ़ाना आदि क्रियाओं से आत्मा में परिणामों की विशुद्धि होती है उससे पुण्यबंध होता है और पाप कर्मों की स्थिति या अनुभाग की हानि, अशुभ कर्मों का शुभ हो जाना संक्रमण, पुण्यकर्म स्थिति का उत्कर्षण, पापापकर्षण, पापसंवर हो जाते हैं। यों निमित्त मिल जाने पर तुम्हारे प्रयोजन भी सिद्ध हो जाते हैं। श्री महावीर प्रतिमाराधन से लाखों करोड़ों के मनोरथ पूरे हो चुके हैं,

हो रहे हैं। किन्तु किसी भी वैद्य या डाक्टर की चाहे कोई भी दवाई विषम रोग को नष्ट कर ही दे ऐसी व्याप्ति नहीं है, हां काललब्धि या पापोदय कीमन्दता हो जाय तो ऐसी दशा में औषधि से लाभ हो जाता है। तद्वत् क्वचित् कदाचित् किसी को लौकिक चमत्कार भी मिल जाते हैं। कोरे उन अतिशयों के लिये ही उन्मुख मत बैठे रहो, व्यर्थ हर्ष विषाद द्वारा कर्मबंध परम्परा बढ़ेगी। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप सामग्री नहीं मिली तो बैरंग लौटना पड़ेगा। अतः सबसे अच्छी बात तो यह है कि लालसायें ही नहीं उपजाओ, केवल आत्म शुद्धियों का संचय करो। बन्धुवर! अभीष्ट पदार्थों में उतना सुख नहीं जितना कि मान रक्खा है ये सब चर्चायें वीर प्रभु ने ही समझाई हैं। यों तो भाइयो! श्री महावीर स्वामी तीनों लोकों की रक्षा करने में तत्पर हैं जिनके लिये वादीभसिंह सूरि ने कहा है कि—

श्रियः पतिः पुष्यतु नः समीहितं
त्रिलोकरक्षानिरतो जिनेश्वरः।
यदीयपादाम्बुजभक्ति— सीकरः,
सुरासुराधीशपदाय जायते॥

कर्तृवादी मत बनो, देखो दोनों वादी, प्रतिवादी महावीर जी की साधना करते हैं जिनेन्द्र भगवान् तो तुम्हारे

समीहित कार्यों को साधते हैं। मानूं भक्त के कोरे कागज़ पर हस्ताक्षर कर देते हैं। मुकद्दमा जीता सो जीता ही, मुकद्दमा हारने वाला भी जीत गया समझो। धन या जमींदारी के मिल जाने से अनेकों के प्राण गये हैं। कुपुत्र और उनकी स्वतन्त्र बहुओं से भी अनेक माता पिताओं को क्लेश भोगना पड़ रहा है। अधिक यशः भी प्राणों का लेने वाला हो जाता है। लोक में कहते हैं कि "अधिक बड़ाई जीवन लेय" थोड़ा अपयश भी होता रहे। एक मन भर मीठी खीर में छः मासे लवण डाल दो तभी मधुर रस व्यक्त होगा शुक्लवस्त्र में स्वल्प नील दे देने पर भूरापन जच जाता है। स्वच्छ पानी नीला दीखता भी है। अच्छा आस्तां। देखो, फिर तुम ही कह दोगे कि महावीर जी ! तुम तो सर्वज्ञ थे मेरी हत्या करा देने वाली जमींदारी मुझे क्यों जिता दी ? गाली देने वाला या मारने वाला लड़का और इज्जत बिगाड़ने वाली पुत्रवधू, क्यों प्राप्त कराई, ऐसे यश में क्या रक्खा है ? जो अपमृत्यु का कारण हो। इत्यादि उपालम्भ महावीर स्वामी जी को न झेलने पड़ें इसी लिये बच्चे को सच्चा सांप न दिलाने के समान त्रिलोक-त्रिकालज्ञ वीर प्रभु ने मानू तुम्हारी तत्काल चाही हुई वस्तु न दिलाकर हित ही किया। और योग्य पुत्र दिला देने में भी क्या रक्खा है ?

जिसके लिये अनगार धर्मामृत में प्रकांड विद्वान् आशाधर जी ने किसी आचार्य का यह उक्त लिखा है कि—

जाओ हरइ कलत्तं, बड्ढन्तो बड्ढिमा हरई।
अत्थं हरइ समत्थो, पुत्तसमो वेरिओ णत्थि॥

लड़का उत्पन्न होतेही स्त्रीको छीन लेता है। बढ़वारी करता हुआ हमारी बढ़वारी के साधनों पर डाका डालताहै। समर्थ होकर प्राणाधिक प्रिय धन को हड़प लेता है। पुत्र के समान कोई वैरी नहीं है। इसी प्रकार भूमि या धन की निन्दा ग्रन्थों में की है यह बात महान आचार्य जी ने महावीर जी की आज्ञा से ही तो लिखी थी यों उनकी निषेधी हुई वस्तुओं को आप उन्हीं से मांगते हैं भला यह भी कोई मनुष्यता है? श्री वर्द्धमान स्वामी तो सबका हित ही करते हैं और करेंगे भी। भक्तों के लिये उनका भण्डार खुला है चाहे जितना ले लो अज्ञानी जीवों के मनोरथ भी दिन में दस बार बदल जाते हैं। अतः वे तीन लोक तीन काल में हित स्वरूप तत्व तुमको बता देते हैं इसी का आदर करो यह तो भाक्तिकों की उक्त पद्यानुसार अर्थ अलङ्कार की बात हुई।

अब द्रव्यानुयोग पर आओ "नहि भैषज्यमातुरेच्छानुवर्त्ति" दवाई कोई रोगी की इच्छा पर नहीं चलती है। हां ठोस लाभ कराती है। सम्यग्दर्शन को अक्षुण्ण बनाये रक्खो। बन्धुवर्ग! जैन न्यायशास्त्रानुसार कार्यकारण

भाव पर लक्ष्य करो। संसारी जीवों के कार्मणवर्गणाओं का योग द्वारा प्रतिक्षण आस्रव होता रहता है तत्कालीन कषायानुसार स्थितिबंध और अनुभागबंध भी पड़ते रहते हैं। प्रतिक्षण एक निषेक का उदय आकर जीवों को सुख दुःख, मोह, अज्ञान आदिक कर्म फल भोगने पड़ते हैं। यों अपने भले बुरे विचार अनुसार बांधे हुये कर्मों का भी लक्ष्य करो, पुण्य पाप की व्यवस्था का चमत्कार आप लोग देख रहे हो। देवों के कण्ठ से अमृत झरता है और हम लोगों के कण्ठ से प्रतिश्याय (नजला)।

अपने अन्तरङ्ग शुभ परिणामों पर दृष्टि डालो, दूसरों पर दोष मढ़ देने की अपेक्षा स्वकीय सञ्चित पाप कर्मों की शक्ति को निरखिये तब नमस्कार मन्त्र और श्री महावीर स्वामी पर आक्षेप करना। श्री महावीर स्वामी जी ने अपनी अपवाद रहित पावन देशना से आपको पुण्य, पाप का फल प्राप्त करना भी आदेशित किया है। व्यर्थ क्यों बौरा रहे हो? स्वस्थता की शीघ्र औषधि सेवन करो। वीर भगवान ने तो अन्धों को अनाप सनाप रत्न बांटे हैं भले ही कोई अज्ञ उन अमूल्य मणियोंका परिज्ञान आदर न करै। एतावता उन मोही जीवोंका ही भवितव्य अच्छा नहीं दीखता है अभी संसार-परिभ्रमण लम्बा पड़ा हुआ है।

विचारशील भ्रातृगण ! जिनको दिन रात मोह, मद, का नशा चढ़ रहा है वे तो विचारे विचार ही क्या सकते हैं। हां जो थोड़ी सी भी अन्तर्दृष्टि रखते हैं उनके लिये इतना ही कथन पर्याप्त है कि नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करते समय या महावीर की मान्यता करने पर जो आत्म-विशुद्धि हुई है या तीव्र पाप का उदय मन्द पड़ गया है बस उतने ही फल पर संतोष करो अधिक फल प्राप्ति के लिये हाथ मत पसारो। अष्टसहस्रीमें ऐसे तीव्र रागी को "अमूल्यदानक्रयी" दोष से दूषित बताया है। यानी मूल्य न देकर दुकानसे सेंत मेंत सौदा झपटना चाहता है। आप पुण्य रहित दशा में तीव्र पुण्यवानों का फल लूटना चाहते हैं। क्यों ? बताओ न।

जयपुर के दीवान अमरचन्द्र जी और विद्वद्वर्य पं० टोडरमलजी महोदय के प्राण कैसे गये ? यदि ये महानुभाव स्पष्ट वृत्तांत कह देते तो अन्य अनेक मनुष्य मारे जाते और ये बच जाते किन्तु ये अहिंसा, करुणारूप ठोस आत्मीय धर्म को पालते रहे, इन्होंने विपत्ति पड़ने पर कदली घात सहित सन्यासरूप परिणामों से शरीर को छोड़ दिया, बताओ जीव-दया का दृष्ट-फल उनको क्या मिला? सच पूछो तो इनको ठोस धर्म फल प्राप्त हुआ। "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" को भूल जाते हो।

इस कलिकाल में पापी जीव अधिक उपजते हैं उत्कट पुण्यवान् नहीं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी निकृष्ट हैं। अतः सामग्री मिल जाने पर पापों का उदय आ जाने से श्रेष्ठ कार्यों में अधिक विघ्न आ जाते हैं। चनों के साथ घिनुआ भी पिस जाता है। यों कदाचित् सज्जनों को भी खिन्न होना पड़ता है। राजवार्तिक में कर्मों करके आत्मा को फल देने में द्रव्य क्षेत्र काल भावों को भी निमित्त बताया है।

जीवन्धर स्वामीने आसन्न—मृत्युक कुत्तेको नमस्कार मन्त्र दिया, मरकर कुत्ता धर्म प्रसाद से देव हो गया उस देव ने आकर महनीय मुनि से प्रथम जीवन्धर स्वामी को नमस्कार किया, कई विद्यायें देकर सत्कार किया। श्री पार्श्वनाथ ने सर्प-सर्पिणी को मन्त्र दिया उन्होंने सौधर्म से भी अधिक विभूतिशाली धरणेन्द्र, पद्मावती होकर श्री पार्श्वनाथ का उपकार किया। इन दृष्टांतों से अन्य भी पुराने और नवीन अनेक उदाहरण हैं।

इन दृष्टांतों से स्वार्थी लोग यों झट कह बैठेंगे कि जो हमारा पहिले या पीछे उपकार करे उस पर हम भी उपकार कर सकते हैं। किन्तु दयालुओ ! यह दया धर्म का सिद्धांत नहीं है। यदि उपकृत जीव उपकार न करे प्रत्युत घोर अपकार भी करे, जैसे कि कमठ ने एक तरफा

वैर निभाया था। सर्प, बिच्छू, खटमल, ततैया भले ही काटते ही जावें तो भी उपकारी महानुभाव ऐसे दुष्टों पर भी सतत कृपा ही करते रहते हैं। विशल्या ने अपने भक्षक सर्प पर प्राण जाते हुये भी दयादृष्टि रक्खी थी। ऐसे आत्मीय पुरुषार्थ द्वारा किया धर्म भविष्य में पुण्य को ही बांधे यह नियम नहीं, ये कृत्य तो सञ्चित कर्मोंके नाश करने में प्रधान कारण हैं। तभी तो मुनिराज उपसर्ग या परीषह आ जाने पर अपने कर्मों की निर्जरा हो जाना ही प्रधान फल विचार लेते हैं। बारहवें गुणस्थान तक विचार होता है, ऊपर संज्ञित्व नहीं। सर्वज्ञ देव का केवलज्ञान अविचारक है। विचार करना मन का कार्य है। तेरहवें गुणस्थान में द्रव्य मन है, भाव मन नहीं और सिद्धों के द्रव्य मन, भाव मन, कोई भी नहीं है।

अतः शास्त्र को पढ़कर वाच्यार्थ को जान लेना या दौड़ रही रेलगाड़ी से बम्बई का चाहे कौन से प्रदेश से दूरत्व निकटत्व के आपेक्षिकज्ञान में विषय हो रहे निस्सार संकल्पित झूठे सच्चे ज्ञेयों को वे नहीं छूते हैं। हां विकल्प ज्ञानियों के उन झूठे सच्चे ज्ञानों को वे जान रहे हैं। वस्तुभूत त्रिकालवर्ती लोकालोक के निखिल द्रव्यगुण पर्यायों को वे युगपत् प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इस विषय की विशेष चर्चा करनीहो तो मुझसे मिलकर ज्ञात कर लीजिये।

शास्त्र-मन्थित तत्व का निरादर कर बैठना उचित नहीं।

जिज्ञासु को गम्भीरता, सहनशीलता, अशीघ्रता, विवेक, सहिष्णुता, विनय से व्यवहार करना चाहिये। स्वल्पमतभेद से तीक्ष्ण कषायें कर बैठना यह टेव जैनों में से जितनी शीघ्र दूर हो जाय उतना ही शीघ्र जैन संगठन हो जायगा, पाप—भार भी हलका हो जायगा। अत्यल्प मतभेद पर उतनी परिणामों में तीव्रता अन्यत्र नहीं पाई जाती है। बनारस में राजपूताने का निरामिष भोजी ब्राह्मण विद्यार्थी उन बंगाली या मैथिल गुरु जी के चरणों में साष्टांग मस्तक छुआकर नमस्कार करता है। कोई २ तो चरणों को धो कर पीजाता है जो कि निर्गल, मद्य, मांस सेवन करते हैं। अब प्रकरण पर आइये।

जीवों के सभी सुख, दुःख इन पुण्य, पाप से सम्बन्धित होंय यह एकांत नहीं है। कतिपय सुख दुःख संसारी के पुरुषार्थ से भी हो जाते हैं।

क्षपक श्रेणी या तेरहवां गुणस्थान अथवा सिद्ध अवस्थाओं के सुख तो नियमतः इच्छा के बिना पुरुषार्थ से ही होते हैं। सबसे बड़ा पुरुषार्थ मोक्ष है जहां कि आत्मा स्वकीय वीर्य (अनन्तबल) से अपने स्वाभाविक परिणमनों में निमग्न है, पर-निमित्तों का आघात बाल बाल बचाये

हुये हैं इसको छोटा उद्योग न समझ बैठना।

जीवों में परस्पर सुख दुःख लेना देना मानने वालों से यह बात और भी कहनी है कि सामायिक करते समय एक श्रावक को सैकड़ों मच्छर काटते हैं या मक्खियां सताती हैं (श्लोकवार्तिकमें "संज्ञिनः समनस्काः" सूत्र की टीकामें एकेंद्रिय द्वीन्द्रिय चींटी मक्खी मच्छर आदि जीवों में भी ईहा, अवाय, धारणा, स्मरण, अभिलाषायें होना सिद्ध कर दिया है।) तो यह श्रावक क्या पुनर्जन्मों में मक्खी, मच्छर, पर्यायों को धारेगा, और वे मच्छर क्या श्रावक बनेंगे? बदला तो तभी चुकाया जा सकता है किन्तु यह बात नहीं है। वस्तुतः जैन सिद्धांत दूसरे ही प्रकार का है क्वचित् ही दुःख सुख बदले से दिये जाते हैं बहु भाग तो एक ओर से ही सुख दुःख दिये जाते हैं।

अन्तरङ्ग में धारा प्रवाह से पुण्य पापोदय का स्रोत चालू है ही। परिशेष में पुरुषार्थ भी तो कोई वस्तु है। यह भी सम्भव है कि किसी अन्य जीव ने हम को सताया हो न्यारे द्रव्य क्षेत्र कालों में दूसरेके द्वारा या अचेतन कर के हमको उसका फल मिले। बंध रहे एक सौ बीस कर्मोंमें नियत जीव, या नियत क्षेत्र, काल नहीं लिख दिये जाते हैं। जहां योग्य प्रकरण बन बैठा वहांही कर्मों ने फल दे दिया। योग्य सामग्री न मिलने पर कर्म फल दिये बिनाही

झर जाते हैं। जैसे कि हमारे आपके देवगति, नरकगति आदि कर्मों का प्रदेशोदय हो जाता है। बंधे हुये कर्म अपना फल देवें ही या पुरुषार्थ कर्मों के अनुसार होय, ऐसी व्याप्ति नहीं है। अविपाक निर्जरा उत्कर्षण अपकर्षण, संक्रमण आदि कर्मावस्थायें भी तो होती हैं। कर्म-चेतना कर्मफल चेतना को समझो।

इस समय हमें सांसारिक सुख दुःख का विचार करना है। किसी को हमने पूर्व जन्म में मारा पीटा हो, तभी वह जीव मारे पीटे यह नियम नहीं है। समुद्र में बड़ी मछ-लियां छोटी मच्छलियों को बिना अपराध खा जाती हैं, एक छपकली हजारों मक्खियों को चट कर जाती है, एक तीतर लाखों दीमकोंको खा डालता है, एक मछलीमार बधिक करोड़ों मछलियों को मारता है। क्या उन सभी मछलियों ने पूर्व जन्मोंमें धीवर को जालमें फँसाया था ? क्या कसाई को बकरों ने पहिले भवों में मारा था ? क्या परस्त्री-गामी राजा का उन बलात्कारित स्त्रियों ने पूर्व-जन्मों में सतीत्व भङ्ग किया था ?, नहीं। यह सब नये तौरसे किये गये पाप हैं।

श्री पार्श्वनाथ भगवान् के जीव ने कमठ को किसी भी भव में हानि नहीं पहुंचाई थी।

एक बात यह भी लगे हाथ समझ लो-कि अयोध्या

नगरीमें एक बुड्ढा भैंसा मार्गमें गिर पड़ा, हज़ारों अयोध्या वासी नरनारी उसको पांवों से रोंदते हुवे निकलते रहे, बड़े कष्ट से भैंसाकी मृत्यु हुई, वह मरकर क्रूर असुर हुआ और उसने अयोध्या में भयङ्कर महामारी रोग फैला दिया, अनेक मनुष्य क्लेश पाकर मर गये और बहुत से जीवों की रक्षा विशल्या के स्नान जल से हो सकी।

हां जी ! आज कल तो सैकड़ों नर नारी, हज़ारों भैंसे, लाखों गायें, करोड़ों मछलियें, असंख्य घुन अण्डे, पक्षी, या अन्य दुर्बल सबल जीवों का संहार हो रहा है। किन्तु एक भी नर गाय या भैंसा मरकर किसी स्वघातक को कष्ट नहीं पहुंचाता है। अनुदिन हिंसा होना बढ़ रहा है। कपट, पापाचार, व्यभिचार, आपक, इच्छायें बहुत दिनों दिन बढ़ती जारही हैं। ऐसी दशा में आप पाप का चमत्कार कुछ भी नहीं देख रहे हैं। बस, गुरुजी का आदेश यह है कि तत्वतः फलाफल को न देखकर अपने धर्म पर दृढ़ बने रहो। परीक्षा काल में ठीक उतरो-बहंक न जाना, अन्यथा दीर्घ आजवंजव भोगना अनिवार्य हो जायेगा, समझे !

अपना प्रिय पुत्र पिता, माता, स्त्री, पति, भ्राता मित्र आदि भी मरकर कोई उपकार या समाचार नहीं लेते देते हैं। हम भी तो पूजन दर्शनको जाते समय मार्गमें कीचड़

माटी में मर रहे, खाये सताये जा रहे कीड़ों की रक्षा कहां करते हैं ? पकड़ कर मारनेके लिये ले जा रहे चूहों, कुत्तों बकरों, गायों को कितने भाई बचाते हैं ? बस कुछ न कहलाओ, देवोंको ही दोष क्यों देते हो ? न तो वे कृपालु परोपकारी देव या मनुष्य ही यह विचार करते फिरते हैं कि इस जीव के पास धर्म प्रत्यक्ष दीख रहा है अतः इस मानव या तिर्यंच की रक्षा कर दो। यह कार्य कर देना किसी का स्वकर्तव्य (डिउटी) नियत भी नहीं है और न जड़ पुण्य पापों की ओरसे किसी को उनका कार्य करते रहने की नौकरी ही मिलती है। और न धर्म सेवने वालों को अपने जड़ पुण्य से ऐसी उपकार कराने की या उपद्रव टल जानेकी मनीषा करना उचित है। कहीं घुणाक्षरन्याय से कोई कार्य बन गया तो त्रिलोक त्रिकाल में व्यभिचार रहित अन्वय व्यतिरेक वाले कार्यकारण भावका क्या पूरा पड़े। हां अचेतन अर्थ अपने द्रव्यादि अनुसार कार्य करते रहे हैं उस अचिन्त्य कठोर शक्ति से अनधिकार अपना मस्तिष्क मत लड़ाओ।

कोई कोई उच्छृङ्खल मनुष्य यों कह बैठते हैं कि आज कल धर्मात्मा अधिक दुःख पाते हैं, पापी मौज उड़ाते हैं, सती विधवाओंसे वेश्यायें सुखिनी हैं, कई कषाई या कम्पनी बनाकर जूता बेचने वाले हिंसक मनुष्य तो

मोटर या चौकड़ी में बैठकर सैर करते फिरते हैं। इसके विपरीत जिनके घर में जिन मन्दिर जी हैं वे दुःखी होते जा रहे हैं। कतिपय बिम्ब-प्रतिष्ठा कराने वालों की दुर्दशा हो चुकी है। संयमी, तपस्वी, दयावान् पुरुष कष्टमें हैं। बीस व्रती ब्रह्मचारी त्यागियों को एक व्यभिचारी गुण्डा हरा देता है। कुस्ती में पछाड़ सकता है।

भाइयो! यह बात नहीं है सञ्चित तीव्र पाप पुण्य अपना कार्य तो करेंगे ही। "अर्थक्रियाकारित्वं वस्तुनो लक्षणम्" कतिपय धर्मात्मा दुःख पाते हैं। साथ ही बहुत से पापी भी अनेक कष्ट उठा रहे हैं। अनेक दीन, दरिद्र, भिखारी, चिर-रुग्ण, या लदने वाले घोड़े, भैंसे, मुर्गी, मछली आदि जीव बहुत दुःखित हैं।

इसी प्रकार कोई पापी पूर्व पुण्यानुसार मौज उड़ाता है। तो अनेक सच्चे धर्मात्माभी आनन्दमग्न हो रहे हैं। घबराते क्यों हो कुछ अपने अन्तरङ्ग कर्तव्योंपर भी लक्ष्य दो, कारणों को सूक्ष्म दृष्टि से निहारो, घर में मन्दिरजी हैं तो सूतक, पातक, लड़ाई, कलह, कदाचार आदि अनेक कुकर्म घर में न होने दो, विनय रक्खो, प्रतिष्ठा विधि में यशःप्राप्तिका लक्ष्य मत रक्खो, ब्रह्मचारी, सदाचारी पुरुषों से मन्त्रविधान कराओ प्रतिष्ठा की अप्रतिष्ठा न करो, स्वयं सदाचारी बने रहो, इन अव्यर्थ कारणोंसे अवश्य ठोस सुख

प्राप्त होगा। कोरी बकभक्ति कार्य कारिणी नहीं है। हम तो कईबार कह चुके हैं कि धर्म पालनके साथ लौकिक सुख प्राप्ति का साक्षात् सम्बन्ध ही नहीं है।

यदि धर्म धारण का फल "दुर्जन तोष न्याय" से साता वेदनीय, उच्चगोत्र, शुभनाम, आयुष्कि इन पुण्य-कर्मोंका बन्ध जाना भी मान लिया जाय तोभी धर्मपालन से तत्काल लौकिक सुख हो जाने की वाञ्छा मत करो, न जाने पुरार्जित कितने चिरबद्ध असंख्यात जन्मों वाले सत्तर कोटाकोटी सागर, या वासनानुसार अनन्त वर्षों के तीव्र स्थिति अनुभाग वाले पाप कर्म आज कल उदय में आ रहे हैं। और आज कल का निर्दोष धर्मपालन न जाने कितनी आबाधा कालके बाद तुमको शुभ फल देवे क्या पता है? कर्मों का उतना डर नहीं जितना कि कर्मों की वासनायें महा भयङ्कर हैं। बालकवत् जल्दी न मचाओ शीघ्रता करने से काम बिगड़ जाता है। धैर्य से हथेली पर सरसों को जमाओ, प्रवचनसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने कहा है कि—

जदि सन्ति हि पुण्णाणिय परिणामसमुब्भवाणि विविहाणि
जणयन्ति विसयतण्हं जीवाणं देव दन्ताणम् ॥

उपाध्यायजी ने इस गाथा और इसकी अगली गाथा द्वारा पुण्योंको दुःखों का हेतु सिद्ध किया है। जोंक करके

रक्त शोषने की अभिलाषाका बढ़िया दृष्टांत देकर युक्तियों करके राद्धान्त पुष्ट किया गया है। महान् पाप का आस्रव होते रहने की दशा में पुण्यास्रव की क्षणिक प्रशंसा कर सकते हो, मात्र पुण्यास्रव को ही चरमध्येय मत समझो। पुण्य की सुख वासनाएँ भी पाप संस्कारों के समान संसार भ्रमण को बढ़ाने वाली हैं। मिथ्यादृष्टि या अभव्य जीव अनेक बार ग्रैवेयकों में हो आया एतावता कोई सार नहीं निकला।

वैष्णव जन प्रतिदिन देवदेवियों से इष्ट वस्तु की प्रार्थना करते हैं, कालीदेवी, विन्ध्येश्वरी तथा अपने गांव या निकटवर्ती अनेक देवी देवों की स्वेच्छा पूरणार्थ पूजा पत्री करते हैं। मुसलमान भी ख्वाजा शरीफ, मीयां-अमरोहा, आदि को अपनी उत्कण्ठायें (तमन्नायें) पूरी करने के लिये मनाते हैं। सो ठीक है, वे रागी द्वेषी देव हैं, और वैसे ही आराधक हैं "यथा देवस्तथा पूजा" किन्तु जैनों के देव तो वीतराग हैं, और जैनोंका लक्ष्यभी रागद्वेष रहित वीतराग विज्ञान की प्राप्ति करना है। फिर यह दुकानदारी कैसी ? व्यर्थ प्रतारणा और आत्मवञ्चना की जा रही है।

खेद की बात है कि जैनों में अजैनों के कतिपय ऐसे व्यवहार आ घुसे हैं। 'भगवान चाहेंगे तो आपका कार्य

हो ही जायेगा, सर्वज्ञ ज्ञाता, दृष्टा, परमात्मा विद्यमान है। एक ही माया है' इत्यादि व्यवहारों से तत्वज्ञान को क्षति पहुंचती है। सम्यग्दर्शन बिगड़ता है। अतः ऐसे प्रसङ्गों से बचे रहो, विपरीत या संशयास्पद विकारों को जैनतत्वों पर मत लादो। जैनों में दूसरों का अजैन साहित्य घुस पड़ा है उसको छेक छेक कर निकाल डालना भी सुदुस्तर है अब तो जैन बेचारे हिन्दुओं में ही गिने जाते हैं। भगवान् रक्षक हैं।

कर्तृवादी वैष्णव या खुदा भक्तोंके सहवास में रह कर देवभक्तिसे लौकिक सुखोंकी प्राप्ति करना ही धर्म का चरम फल मत समझ बैठो। मोहम्मदीय यवनों की अपने इष्ट देव पर अटूट श्रद्धा है, अपने सधर्मिओंसे हार्दिक अनुराग है दीन कहते ही लाखों करोड़ों एक जीवन मरण हो जाते हैं। धर्म पर सब कुछ अर्पण करने को सन्नद्ध रहते हैं। मात्र इतना अनुकरण करो, अभक्ष्य भक्षण, हत्या, अग्नि-दाह, अपवित्रता का नहीं।

जिनदेव, गुरु, शास्त्र में और जिनधर्म में गाढ़ श्रद्धा रक्खो। महावीर जी के दर्शन से, सम्मेदशिखर जी की यात्रासे कर्मभार अवश्य हलका हो जाता है, विशुद्धि बढ़ती है इस सर्वज्ञोक्त को मानो। ईश्वरवादियों ने ईश्वरको सर्व शक्तिमान् मान रक्खा है। किन्तु जैन सिद्धांतमें वीर प्रभु

को अनन्त शक्तिशाली कहा है। कल को अभव्य यदि मोक्ष हो जाना मांग बैठे, तो वे बेचारे भी क्या करें। यदि तीर्थंकरका वश होता तो सबसे प्रथम जगत भर की कर्म वर्गणाओं को ही नष्ट कर डालते। किन्तु यह कार्य वे नहीं कर सके।

चार निकाय के देव भी क्या दे सकते हैं? पुरुषार्थी जीव को स्वशक्तियों पर ही अवलम्बित रहना चाहिये, अपनी कमाई सर्वोत्कृष्ट है यही स्वालम्बन जैन सिद्धान्तका रहस्य है। न्यायशास्त्र में "हिताहित-परिहार-समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्" हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार कराने में समर्थ स्वकीय ज्ञानको माना है। अतः अपने समीचीन ज्ञानों को सम्भालो, अशरण अनुप्रेक्षाका चिन्तन करो, तीव्र कष्ट पड़ने पर कोई शरण नहीं दीखता है। इन्द्र, अहमिन्द्र, क्षेत्रपाल कोई रक्षा नहीं करता है। श्री जिनेन्द्रदेव भी कृतकृत्य शुद्धात्मा होकर सिद्धालय में विराजमान हैं, आप किस सहायता की भिक्षा के प्रपञ्च में फंसे हो, आत्मबल बढ़ाओ। मांगनेसे देव या पुरुष कुछ भी नहीं देता है। जो स्वयं दीन है वह दूसरोंको क्या निहाल करेगा। अपनी आत्मा की विडम्बना कर तुच्छ भले ही बन जाओ।

यदि एक दो देवों ने धर्मात्माओं की रक्षा की है तो

साथ ही साथ यह कहना पड़ता है कि अनेक क्रोधी देवों ने मुनियों पर अकारण घोर उपसर्ग भी करे हैं। देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनों द्वारा किये गये उपसर्गों के हज़ारों दृष्टान्त प्रथमानुयोग में पाये जाते हैं। दृष्टान्त सभी प्रकार के विद्यमान हैं। सुभौम या लक्ष्मणको किस ने मारा ? मनुष्य भी घातक या रक्षक हैं।

उत्तर पुराण में लिखा है कि एक स्त्री को भयङ्कर सर्प ने काटा प्रियपत्नी की बुरी अवस्था देखकर उसका पति दौड़ा हुआ मुनिराज पर गया, और बोला कि यदि मेरी पत्नी जीवित हो जाय, तो मुनिपुङ्गव ! मैं आपकी सहस्र-दल कमल से पूजा करूंगा मुनि मौनव्रती थे दैवयोग से स्त्री जीवित हो गई श्रद्धा वश पति बेचारा हज़ार पत्त वाले कमल को लेने गया तलवार यहां ही छोड़ गया था। इधर निकृष्ट स्त्री ने एक शिष्ट चोर से संकेतपूर्ण बातें कहीं पति को विघ्न समझा, चोर उसका भाव ताड़गया, पतिने आकर कमल से मुनिराज की पूजा कर, जो मुनिराज के सन्मुख शिर झुकाकर नमस्कार किया, उसी समय उस दुष्ट स्त्री ने पतिको मार डालनेके लिये तलवार का प्रहार किया किन्तु झटिति उस भले चोर ने पति की रक्षा की। इस कथा भागसे आप लौकिक सुख दुःखोंको हेय समझने का शिक्षा ग्रहण करेंगे ऐसी सम्भावना है।

विज्ञ पाठको ! धर्मका फल अतीव गूढ है । मैं स्वयं शब्दों द्वारा आपको समझाने में असमर्थ हूं । एक गंवार ग्वालियेने ध्यानस्थ मुनिको तीव्र जाड़ोंमें कृपावश कम्बल उढ़ा दिया था । किन्तु ऐसे कष्ट निवारण को मुनि तो उपसर्ग ही समझते हैं । आप ही बतलावें कि ग्वालिये का पुण्य हुआ या पाप ?

श्री समन्तभद्राचार्य जी ने लिखा है कि वर प्राप्तिकी इच्छा से आशावान् नहीं होना चाहिये ।

अच्छा तो और भी सुनिये-कविवरेण्य महान् विद्वान् धनञ्जय कह रहे हैं कि—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोसि

हे देव ! आपकी स्तुति कर मैं दीनता से कोई वर नहीं मांगता हूं । क्योंकि तुम में कोई राग द्वेष नहीं है, इच्छायें भी नहीं हैं । तुम तो सब से उपेक्षा करने वाले हो दोगे भी क्या ?

अथास्ति दित्सा यदि वोपरोध-

स्त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिम् ।

कवि जी जिनेन्द्रदेव से कह रहे हैं कि यदि आप फिरभी कुछ देना चाहते हो, और मुझे बलात्रूपसे उकसा रहे हो कि "भाई कुछ न कुछ ले लो" ऐसा तुम्हारी ओर से भारी उपरोध होने पर मैं यह ही कहता हूं, कि मुझे

कोई लौकिक फल नहीं चाहिये। हे भगवन्! केवल आप में मेरी भक्ति बनी रहे यही वर मुझे दीजिये, यानी सम्यग्दर्शन को मैं मांगता हूं। स्तुतिकारोंके यहां जिनेन्द्र देव की भक्ति को ही सम्यग्दर्शन माना है और यह ठीक भी है।

बन्धुओ! सबसे छोटा धर्म श्रद्धा, भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र दर्शन, पूजन करना है। और बड़ा धर्म क्षपक श्रेणी के शुद्ध परिणाम हैं। ये धर्म अपनी निवृत्ति अंश से कर्मों का संवर और निर्जरा ही करते हैं। हां पूजन, प्रतिष्ठा, जाप्य देना, परोपकार, सरागसंयम आदि के प्रवृत्ति अंशों से कुछ पुण्यबन्ध भी मान लिया जाय तो ऐसे फलकी भी धर्मात्मा कोई तीव्र अभिलाषा नहीं रखते हैं। परवश लौकिकसुख भोगना पड़े, यह न्यारी बात है। भावसम्यग्-दर्शन का अन्तस्तत्व पकड़ो, जिसको कि धारने वाले गोमट्टसार अनुसार लाखों करोड़ों में आज कल यहां एक दो ही हैं। अतः परिशेष में कहना पड़ता है कि निष्काम होकर धर्मका सेवन किये जाओ। "नेकी कर और दरिया में डाल" यह यवनों की किंवदन्ती भी इसी आशय को लिये हुये है।

शुभाशुभ फलों से अणुमात्र राग, द्वेष, मत करो, आत्मा आत्मा को आत्मा करके आत्मा के लिये आत्मा

से आत्मा में संचेतन करता रहे, यह अभेद षटकारों की भावना सर्वतो-भद्र है। सीता, सुदर्शन आदि को भी इसी स्वानुभूति से ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। "उस व्यक्ति ने क्षणिक लौकिक सुख प्राप्त कर लिया हम नितान्त, धर्म में लगे रहते हैं, तो भी कुछ फल नहीं मिलता है" ऐसे तुच्छतापूर्ण विचारों को मन में मत लाओ, परीक्षक को ऐसे विचारों से ही तुम्हारे धर्मपालन का अनुमान लग गया, बस चुप रहो, अधिक कलई मत खुलवाओ। भूलें पर भूलें न करते जाओ।

कतिपय बड़े लोगों से भारी गलतियां हो जाती हैं। कुछ कम ८७ सत्तासी हज़ार वर्ष पहिले की बात है अंतिम बलभद्र, नारायण ने श्री नेमीश्वरनाथ भगवान् के भविष्य द्वारिका-दाह निरूपण पर पूर्णश्रद्धा न रख महती भूल की, जिससे कि वे अपने वृद्ध माता पिताओं को या कुटुम्बी-जनों की अथवा प्रिय प्रजा-जन आदि की रक्षा नहीं कर सके, अवसर आ पड़ने पर भी समुद्र जल से आग बुझा देने के बलकी शेखी पर तने रहे, और अन्तमें जो भगवान् ने कहा वही हुआ, सभी प्रयत्न व्यर्थ गये, समुद्र का जल पैट्रोल हो गया, सब शेखी भस्म धूल में मिल गई।

निकटतम बारह लाख वर्ष हुये उस युग की बात है कि उपान्त्य बलभद्र रामचन्द्र जी ने मोक्षगामी जीवों को

उदर में धारने वाली गर्भिणी शीलवती सीता को हिंस्र जन्तुओं से भरपूर हो रहे भयङ्कर वन में छुड़वा दिया। और इसी अपराध के कारण उनको सीता की अन्तर्दृष्टि से निकली हुई यह करारी लताड़ सुननी पड़ी, कि 'लोकापवाद से जैसे मुझे छोड़ दिया है वैसे कहीं धर्मको न छोड़ बैठना।' इसी प्रकार भयङ्कर अग्नि-प्रवेश की कठिनतम परीक्षा देने को स्वीकार कर लेना भी सीता की नितान्त गलती है। यदि कुछ ऊंच नीच हो जाता तो धर्म की कितनी वाच्यता होती, इस तत्वकोभी कभी आपने सोचा है। माना कि रेत के मैदान में छलांग मारने वाला नट पांच गज पैंतरा मार लेता है, किन्तु उससे दो गज कम चौड़े भयङ्कर कुए को नहीं उलंघवाना, देखो-धोखा हो जायगा, काले भुजङ्ग के साथ मत खेलो। अपने घर के आगे एक गज ऊंचे चौंतरे पर पांव लटका कर आप निर्भय बैठ सकते हो, किन्तु सतखने महल की सीधी भींत के ऊपर कहीं नीचे पैर लटका कर नहीं बैठ जाना। पाप आकर्षण करता है और मृत्युयें खींचती हैं कदाचित् गिर पड़े तो अपयश के साथ अपमृत्यु ही प्राप्त होगी।

अनेक अत्याचार या कष्टों को सह लेने के पश्चात् सोमा, चन्दना, सुलोचना, वृषभसेना, अञ्जना, द्रौपदी या सुदर्शन, श्रीपाल, मानतुङ्ग आदि को कुछ थोड़ा सा

लौकिक चमत्कारभी प्राप्त हो गया तो इससे क्या पूरा पड़ सकता है। जब कि लाखों, करोड़ों अखण्ड पतिव्रताओं को रत्ती भर भी अतिशय न प्राप्त होकर कदली-घात मरण करना पड़ा है अनेकों को सतीत्व भङ्ग सहना पड़ा है। सीता को भी पूर्वभव में यह बलात्कार झेलना पड़ा था। तभी तो सीता ने रावण के जीवके साथ वैसा बुरा निदान किया था। इस जन्ममें भी रावण की इस प्रशस्त दृढ़ प्रतिज्ञाने सीताको बचा लिया कि 'चाहना न रखनेवाली स्त्रीका मैं सेवन नहीं करूंगा।' असंख्य धर्म-प्राण पुरुष वर्ग भी बेमौत मार डाले गये, आज भी कई रियासतों, म्लेछ प्रांतों में भारी पोलें चल रही हैं।

मैं तो कहता हूं कि अन्यायी राजाके यहां ही क्या? पहले अपने हृदयों को ही आप लोग टटोल कर देखें, हम लोगोंकी आत्मा में धर्म कितना है? और पापपङ्क कितना ठसाठस भरा हुआ है कि यदि आप आतुर होकर किंचित् धर्म सेवनका झटिति में चमत्कार देखना चाहते हैं तो वह अधिक मात्रामें पाया जा रहा पापपुञ्ज भी अपना चमत्कार दिखानेके लिये सबसे आगे निकल पड़ेगा। बोलो ऐसी हालत में आप चमत्कार देखने की उत्कण्ठा (हविश) को कम करेंगे या नहीं?। विचारक भ्राताओ! निष्पक्ष होकर अपने पाप और पुण्य की रोकड़ को मिलाओ,

की आय व्ययका खाता ठीक करो। सढ़े तेईस घण्टे तक किया गया कषाय–जन्य पापही पहिले पूरा फल दिखायेगा। पीछे पूरे दिन रातमें मात्र आध घण्टा किये गये धर्मसेवन को फल दिखानेकी वारी आवेगी। ऐसी अवस्थामें आप ज़ोर से पुकार मचायेंगे, कि महाराज हमें धर्म, अधर्म में से किसी का फल नहीं देखना है। हमें यों ही जैसे का तैसा पूर्व [redacted] की अवस्थामें निरापद जीवित रह लेने दो नहीं तो पाप के तीव्र प्रहारों के मारे अभी दम घुट जावेगा जगत में पापपुञ्जके गूढ़ रहस्यधारी (छिपे रुस्तम) बहुत हैं जो कि आजकल तीसरे नरकतक जाते हैं। चौथे, पांचवें छठे, सातवें नरकों को भी आज कल विदेह क्षेत्र से मरकर पापी जीव जाते हैं। किन्तु इन प्रत्येक नरक में प्रतिक्षण असंख्याते जीव पहुंचें तब इनका पेट भरे।

ढाईद्वीप में मनुष्य या संज्ञी असंज्ञी तिर्यञ्च बेचारे कितने हैं। इनकी एक समयकी भी भूख नहीं मिट सकती बारह स्वर्गोंमें भी असंख्याते जीव प्रतिक्षण जन्म लेते रहने चाहिये सम्यक्त्वी तिर्यंच सोलहवें स्वर्ग तक जाता है। तथा नरकों से निकल कर असंख्याते जीव कर्मभूमि के गर्भज जीवों में ही जन्म लेंगे। पहिले दूसरे स्वर्ग से आ कर तो एकेन्द्रिय भी हो जाता है, ऊपरले स्वर्गोंसे नहीं। यों नरकों स्वर्गों को भरने वाले या वहां से आकर गर्भजों

में जन्म लेने वाले जीवों का बड़ा भारी गोदाम, स्वयम्भू-रमण–द्वीपार्ध और स्वयंभू रमण समुद्र है। जहां कि असंख्याते व्रती अव्रती गर्भज तिर्यंच पाये जाते हैं। और समुद्र में करोड़ों, अरबों असंख्याते राघव तन्दुल मत्स्य, सम्मूर्च्छन जीव भरे पड़े हैं।

बारहवें स्वर्ग से ऊपरले देव तो गर्भज मनुष्यों में ही उपजते हैं लाखों करोड़ों वर्षोंमें एक देव मरता उपजता है।

भ्राता जी ! यह सब गूढ़ चर्चायें महावीर भगवान् ने कही हैं वीर का उत्तरदायित्व अब त्यागी या विद्वानोंपर है। जैसे कि घरमें अकेली बुढ़िया ने चोर घुस आनेपर या आग लग जाने पर चिल्लाकर कह दिया कि चोर चोर आग लगी आग लगी। बस अब धन या प्राण बचा लेनेका उत्तरदायित्व सुनने वालोंपर आ जाता है। संसारी जीवों में कषायों की आग लग रही है रत्नत्रय चुराये जा रहे हैं अतिवीर का आगम चिल्ला रहा है। अब धर्म को बचा लेना त्यागी और पण्डितों पर निर्भर है।

बन्धुओ ! आज दिन १०० सौ में से पचानवे पुरुष शृङ्गाररस-पूर्ण सिनेमा, नाटकों, खेल तमाशोंको देखते हैं, या देखने की इच्छा रखते हैं। अनेक स्त्रियांभी प्राचीन धर्म परिपाटियों को छोड़कर नवीन वायु में बह गई हैं ये चेष्टायें अतीव निकृष्ट हैं। कतिपय मन-चले नवयुवक

दर्शन पूजन करते समय भी मन को इधर उधर शीघ्र फैंक देते हैं जहां से कि कोई सौन्दर्य, यौवनपूर्ण स्त्री स्वरूप आ रहा है, वे अपने मन को आज्ञा देते हैं कि बेवकूफ, पोंगा, गधे, नालायक, हे मन ! तू कहां माला आदि के झगड़े में लग रहा है, यह दाने सरकाने का फालतू कार्य तो फिर भी कर लेना, किन्तु यह काश्मीर का माल यहांसे चला गया तो फिर हाथ आने का नहीं, देख कोई चोखा माल न निकलने पावे। मानो इसी लिये मन्दिरजी में आये थे। ऐसे लोलुपी जीव एक बार मनोज्ञ अबला को देख लेंगे। किन्तु अपनी टेवके अनुसार उसी दीन कातर दृष्टि को सतर्क होकर फैलायेंगे, तो उसको सौ बार काली, कानी, लूली, कुरूपा को देख लेना भी करना पड़ेगा। क्यों जी जिस जूए में एकबार जीत और सौबार हार होय, इस टोटे के धन्धे को कौन कब तक भुगतेगा, बताओ। आंखसे टकटकी लगाकर देखना, हाथ मिलाना, आसक्ति के साथ शरीर स्पर्श करना इसमें रागी पुरुष की उत्तरोत्तर बहुत बिजली खर्च हो जाती है। इस शक्ति का व्यय तुम बहुत दिनों तक नहीं झेल सकोगे।

जितेन्द्रिय के ही शारीरिक, मानसिक, आत्मीय शक्तियोंका विकास होता है अधिक स्पष्ट क्यों कराते हो। पूजन, ध्यान, तत्व-चर्चा, आदि धर्म्य क्रियायों में कितने

महानुभावों का और कितनी देर तक निश्चित मन लगता है ? इसका गहरा परामर्श करो।

अच्छा ब्रह्मचारी जब गाय, भैंस, बकरी को दोहने में भी सङ्कोच करता है घोड़ी, हथिनी पर बैठना नहीं चाहता भगवान की सवारी भी हाथी पर होती है, हथिनी, घोड़ी पर नहीं। जिनेन्द्र की पालकी स्त्रियां नहीं ले चलती हैं। ब्रह्मचारी काठ चित्रकी स्त्रियों को भी सराग भावोंसे नहीं देखता है। तो आप भक्त जी ! क्या मन्दिरजी में दस मिनट के लिये इस वानर मनको वशमें नहीं करसकते हैं ? बत।

दयनीय मोही जीवो ! निकृष्ट आत्माओं में जब सम्यग्दर्शन ही नहीं तो अणुव्रत और महाव्रत हो जाना तो अतीव कठिन है। तभी तो सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने गोमट्टसार जी में उन्तीस अङ्क प्रमाण मनुष्यों में केवल दशअंक प्रमाण मानव सम्यग्दृष्टि बताये हैं और संयमी तो मात्र आठ अङ्क प्रमाण हैं। इस प्ररूपणानुसार सम्भवतः अतिशयोक्ति से वर्तमान जैनों में चार छह सम्यग्दृष्टि मिल जावें। इस विषय का अधिक विवेचन "सम्यग्दर्शन की दुर्लभता" शीर्षक लेख में किया गया है विशेष जिज्ञासु आगमान्वित उस लेख का अध्ययन करें।

उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, तो निर्मल हैं ही जब क्षयोपशम सम्यक्त्वमें अपने बनाये हुवे जिनबिम्ब, जिन

चैत्यालय को अन्यथा कहना और दूसरों के बनाये हुवों को अन्य का कहना चल दोष माना गया है। दोनों लोकों के विषयों की आकांक्षा करना अथवा कुदृष्टियोंकी प्रशंसा करना आदि मल दोष हैं। शांतिनाथ शांति के कर्ता हैं, पार्श्वनाथ विघ्नों के हर्ता हैं यों अगाढ दोष कहा गया है फिर साक्षात् रागद्वेष मूर्च्छामय उपभोगों की चाह करना तो भयङ्कर अपराध है।

जबकि धर्म-पालनका फल लौकिक सुख या चमत्कार मिल जाना है ही नहीं तो आप भी इच्छा रखकर सीता के अग्नि प्रवेश स्वीकारके समान कोई गल्ती न कर बैठना, नहीं तो अपने विनाश के साथ मङ्गलमय, लोकोत्तम, शरण्य, धर्म का भी उपहास कराओगे, घोड़ी के नाल लगना देखकर कहीं मेंडका भी पांव न पसार देवे।

यदि फिर भी आपको "धर्मका फल कर्म निर्जरा है" इस सिद्धान्त पर विश्वास नहीं है धर्मका चमत्कार अवश्य ही दीखता है आप इसी पर तुले हुये बैठे हैं। तो कोई माई का लाल आज मिति अपने अहिंसा, सत्य, शीलादि किसीभी धर्मकी कठोर अग्नि परीक्षा देवे। कोरे वितंडावाद (कपोल बजाने) में क्या रक्खा है ?

देखो बात यही है कि सच्चे या झूठे चमत्कारोंमें मत फंसो, लड़के ही बाजीगरोंके विस्मयपूर्ण चमत्कार के देखने

के लिये लालायित रहते हैं विचारशील नहीं। कोई बाजीगर देखते देखते कांटे खा जाता है और कांच को चबा जाता है, लोहे के गोले को लील जाता है। अप्राप्य फलों को मंगाकर दिखा देता है, मैक्समेरेजम वाले भी अनेक तमाशे दिखाते हैं। अन्य कोई छाती पर मोटर चलवाता है, मौत के कुये में मोटर साईकल ऊपर, नीचे, दौड़ाता है, आंख के पलक से चार धरी वजन उठा लेता है। इस प्रकार मनुष्यों कृत अनेक चमत्कार हैं। सरकस में पशुओं के भी आश्चर्य-जनक खेल देखे है, हां देवों के तो अतीव अतिशयपूर्ण कार्य शास्त्रों द्वारा जाने जा सकते हैं, दो मिनट में असंख्याते योजनों चले जाना, समवसरण का पूरा समान एक मिनट में स्वर्ग से यहां ले आना, झट छत्तीस, अड़तालीस, कोस की नगरी बना देना आदि। चक्रवर्ती के शिल्पीरत्न के कार्यों को पढ़ो। औषधियों के अनेक जौहर देखे सुने गये हैं, महीनों से हो रहे दस्त एक गोली से एक सैकिन्ड में रोक दिये गये हैं। किसी किसी का डबल निमोनिया बर्फ में रख देने से दूर हो गया है, क्वचित् दही खिला देने से सन्निपात हट गया है। किसी का चिर कोढ़ एक चमचा दवाईसे नष्ट हो गया था, डाक्टर या वैद्यके कहने से कई रोगी स्मशान से लौटाये सुने जाते हैं। पौद्गलिक कर्मों का चमत्कार तो दिन रात दीखता है।

है, धनी निर्धन हो जाता है, दरिद्र लड़का गोद लिया जाकर करोड़पति बन जाता है। मरने लायक रोगी वर्षों तक बीमार बने रहते हैं, हट्टा कट्टा युवा दो घण्टों में मर जाता है, कई परीक्षायें पास करचुके कोई सज्जन जीविका के लिये भटकते फिरते हैं, और हस्ताक्षर करना भी नहीं जानने वाले कतिपय व्यक्ति करोड़पति बने हुये हैं। पेटमें छुरे भोंके जाते हैं कलका करोड़पति आज भीख मांग रहा है, कुटुम्ब के कुटुम्ब नष्ट कर दिये गये हैं। मुहल्ले जला दिये गये हैं। रेलगाड़ियां लूटी गई हैं। यह सब दैव दुर्विपाक है।

विचारशीलो! किसी के चमत्कारों को देखकर उधर ही उन्मुख हो जाने की टेव मत डालो। हजारों लाखों मनुष्यों में जैसे एक दो जादूगर होते हैं। उसी प्रकार जीव से बन्धे हुये अनन्तानन्त कर्मों में से सौ पचास कर्म-स्कन्ध ही डुग्गी बजाकर बहुत से बुद्धू लोगों में अपना सातिशय फल दिखाते हैं। शेष बहुभाग कर्म तो जीवका अकेले में ही स्वसंवेद्य सुख, अज्ञान, दुःख आदि फल देते रहते हैं। हाथी के दांतों के समान दिखाऊ कर्मफल न्यारे ही हैं, जो कि अत्यल्प हैं। सुना है कि अभी दो तीन वर्ष पहले हरिद्वार के कुम्भ की बात है, एक मूढ़ स्त्री ने गङ्गाजी के अतिशय की कल्पित मान्यता पर अपने दो

प्रिय पुत्र गङ्गा में बहाकर खो दिये, और रोती कलपती गङ्गा को कोसती हुई चली आई। श्री समन्तभद्राचार्य आप्त-मीमांसा के आदि में लिखते हैं—

देवागमनभोयान—चामरादिविभूतयः,
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान्।

कि देवोंका आगमन, आकाश में चलना, चमर–ढुलना सिंहासन आदि विभूतियां तो मायाचारियों में भी देखी जाती हैं। तथा शरीर आदि के स्वेदरहितपन आदि महान् अभ्युदय भी देवों में पाये जाते हैं। तिस कारण हे जिनेन्द्रदेव! आप महान् आत्मा नहीं माने जा सकते हैं। आत्मा या धर्मके महत्वाध्यायक जो अभ्यन्तर तत्व हैं वे अन्य ही हैं, स्वानुभव-संवेद्य हैं। दैव के अनुकूल होने पर धन आदि तुच्छ फलों को तो अन्य छोटे मनुष्य भी दे सकते हैं। बढ़िया वकील या बैरिस्टर या स्वार्थी जज की प्रेरणा होनेपर मुकद्दमा को जीत सकते हो, किसी सेठ या राजासे अथवा अन्याय (चोरी, डाका, ब्लैक) से धन भी प्राप्त हो सकता है। औषधियों या वैद्यों करके अथवा अन्य मन्त्र, तन्त्र, आदिक प्रयोगों से पुत्र प्राप्ति की जा सकती है। रोगभी दूर किये जा सकते हैं। अनेक मिथ्यादृष्टि साधु या तांत्रिक या इतर धोबी, मेहतर आदि भी कितने ही कार्यों को साध देते हैं, ऐसा लोकप्रवाद है

कुछ भी हो या न हो मुझे यहां यह बताना है, कि अपत्य, वित्त, और उत्तरलोक की तृष्णाको बढ़ाने के लिये त्रिलोकेश्वर जिनेन्द्र से भीख मांगना अपनी और उनकी अप्रतिष्ठा (तौहीन) करना है, बासी रोटी के टुकड़े के लिये महान् राजा से अनुनय करना शोभा नहीं देता है।

अष्टसहस्री में लिखा है कि—"यावन्ति कार्याणि तावन्तः स्वभावभेदाः" किसी विवक्षित कारण से जितने कार्य हो जाते हैं वे स्वभाव और शक्तियां उस कारण में वस्तुभूत टिकी हुई हैं। मूर्ति, मन्त्र, औषधि, यन्त्र आदि से जो कार्य होते दीख रहे हैं उनके कारण ये हैं। हां धर्मात्मा पुरुष इन राग द्वेष वर्धक, कर्मबन्ध के प्रकरणोंमें नहीं फंसें। आत्मशुद्धि के प्रस्तावों को अपनावें।

आज कल अनेक भाई अतिशय क्षेत्रों पर ही कुछ कामना लेकर जाते हैं सिद्ध क्षेत्रोंकी वन्दना तो वे कर्मक्षय या वैराग्य का प्रयोजन रख कर ही करते हैं। लौकिक सुखों की कामना या साधना की अपेक्षा कर्मक्षय की अभिलाषा अच्छी है। इस बात को भी वे जानते हैं कि इच्छावश अतिशय क्षेत्रोंकी यात्रा करना यदि प्रवेशिकाकी परीक्षा है तो सिद्ध क्षेत्रों की भावपूर्ण वन्दना करना अंतिम आचार्य परीक्षा है। अच्छा यही सही, किन्तु भाई क्या अब तक प्रवेशिका परीक्षा में ही पड़े रहोगे? वा आगे भी

सरकोगे। देखो धर्म स्वयं एक स्वतन्त्र देव है, श्री अर्हन्त या सिद्धों के समान नौ देवों में एक धर्म भी देव गिनाया है अतः स्वतन्त्ररूप से धर्म आदरणीय है।

कई भोले भाले जैन भ्राता कह बैठते हैं कि हमारा चित्त धर्म में लगता ही नहीं, बताओ हम किस प्रकार निष्काम धर्म सेवन करें ? उन द्रव्य धर्मात्माओं के प्रति आचार्य महाराज ने कहा कि रात दिन पाप-पङ्क में निमग्न रहनेसे या आरम्भ परिग्रहकी तीव्र वासनाओं में लगे रहने से मिथ्यादृष्टि आत्मामें धार्मिक भाव जागृत नहीं हो पाते हैं। अधार्मिक प्रपञ्चों से ठसाठस भर रहे मस्तिष्क में धर्म्यक्रिया के लिये स्थान खाली नहीं है। एक जैन कवि ने लिखा है कि काले कम्बल पर केसर का रङ्ग नहीं चढ़ सकता है।

कलि दोष से इस युग के किसी किसी धर्मात्मा का हृदय भी निष्ठुर हो जाता है, प्रज्ञा, अज्ञान, परीषहें साथ हो जाती हैं, स्वल्प निमित्त मिलतेही अनन्तानुबन्धी जागृत हो जाती है, धर्म सेवन के साथ कषायें बढ़ जाती हैं। अन्न प्राण हैं फिर भी रोग में खा लेने पर विष हो जाता है। जल जीवन है वही विकृत होकर जलोदर बन जाता है। पित्त अग्नि पचाती है फिरभी ज्वर, जीर्णज्वर (दिक) बन बैठती है। वायु प्राण है तो भी वात व्याधि, अर्धांग,

धनुर्घात, पीड़ायें उपजा देती है। जगत में अव्यक्त पाप बहुत हो रहे हैं। नित्य निगोदिया जीव कौन से केवली या सङ्घका अवर्णवाद करता है। या प्रदोष निन्हव, माया वध, दान आदि करता है फिर भी आठों कर्मों को बांधता रहता है। आयु को त्रिभाग में या अन्त में बांधता है।

बन्धुवर! वृक्ष, पृथ्वीकायिक, लट, चींटी आदि जीवोंके व्यक्त अव्यक्त अनेक दुष्ट परिणाम होते रहते हैं। बहुत से तो स्वसंवेद्य भी नहीं हैं। उनकी पाप करने की इच्छा भी नहीं है। क्या करें दुर्लेश्याओं की फटकार से दुर्भाव बन बैठते हैं। अतः कतिपय बकभक्त धर्मात्माओं को सच्चा ठोस धार्मिक बनना चाहिये।

किसी किसी धर्मात्मा में एक दो कदाग्रह (हठ) भी लग रहे हैं, वे अनधिकार विषय में भी अपनी मन-मानी चलाते हैं। कतिपय दान करने वाले अपना नाम, यश, बहुत चाहते हैं। संस्थाओं में दानी अल्पानुभवी अपनी ही टेक चलाते हैं। पठनक्रम, समय-विभाग, विद्यालयके नियम बनानेमें अपनी टांग अड़ाते हैं विद्वान् तो उनके नौकर ठहरे, उनकी चलने नहीं देते हैं। ऐसे धनिकों के प्रमादार्थ किसी किसी संस्था ने सङ्गीत का भी प्रबन्ध किया है। वैसे तो यह बात है कि—

काव्येन हन्यते शास्त्रं तच्च गीतेन हन्यते।

गीतं कामानुरागेण' सोपि रत्यतिसेवया ॥

ऐसी अनेक त्रुटियां जैनों में घुस पड़ी हैं अतः राग द्वेष को छोड़कर पावन कार्यों को करो।

प्रिय बन्धुओ! इच्छाओं, आपकों, सङ्कल्प, विकल्पों, कषायों को पुरुषार्थ द्वारा घटाओ, इन्द्रिय-लोलुपता को न्यून करो, पुनः घोर प्रयत्न कर आत्मा को स्वकर्तव्यों पर झुका दो, व्रतधारण, इन्द्रिय-विजय, कषाय निग्रह करने पर पिल पड़ो, भोगों में अनासक्ति रक्खो, तुम अवश्य धर्म मार्ग पर आरूढ हो जावोगे। मोही जीवों को अपनी दिनचर्या बदलनी पड़ेगी।

प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त या सूर्योदयसे पहिले सीधे करवट से उठो, पञ्चपरमेष्ठी का स्मरण करो, सिद्धों का आशीर्वाद तुम्हारे सिर पर है। चौबीस तीर्थंकर और विदेह क्षेत्र के विद्यमान बीस तीर्थंकरोंका गुणगान करते हुवे नाम उच्चारण करो, पुनः शारीरिक शङ्काओं से निवृत्त होकर पश्चिम मुख दन्तधावन और पूर्वमुख स्नान करके उत्तरमुख शुद्ध वस्त्र पहिनकर देव-दर्शन या देव-पूजन के लिये पवित्र जिन मंदिर को जाओ, मार्ग में यों विचार करते जाना कि यह दरिद्रता, धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार, सुख-दुःख, यश-अपयश, जीवन-मरण सब अर्जित कर्मों का खेल है। पंचपरमेष्ठी या शुद्ध आत्मा का ध्यान करना ही उपादेय

है, मानव पर्याय पाकर स्वाभाविक धर्मोंको धारने के लिये ही सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए। जिन मन्दिरजी में तीन बार "नि:सहि" कहते हुवे घुसो, देव दर्शन करके चिड़चिड़ा और वज्रलेप हो रहा निकाचित बन्ध भी टूट जाता है।

श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन करतेही कहो कि हे नाथ ! मेरा आज मनुष्य जन्म सफल हुआ, मेरे नेत्र आज सार्थक हुए, जिनसे कि हे त्रिलोकी-पूज्य जिनेश्वर ! मैं तुम्हारे दर्शन कर रहा हूं मेरा मन आज निरवधि सुखी है, जिस से कि मैं आपके गुणोंका चिन्तन कर रहा हूं। [जिनेन्द्र की विशाल, सुन्दर, शान्त मूर्तिको देखकर बड़ा आनन्द उपजता है। तेरहवें गुणस्थान में बालक, कुमार, युवा-वस्थायें हैं बूढ़ापन नहीं है। तप करते कोई बूढ़ा भी हो गया होय तो बारहवें गुणस्थान के अन्त में परमौ-दारिक शरीर मल्लों से भी बढ़कर हो जाता है झुर्रियां मिट जाती हैं तीस वर्षका सा पट्ठा बन जाता है, कपोल भर जाते हैं बुढापा सर्वथा नहीं रहता। श्रवण बेलगोल (जैन बद्री) के बाहुबली की प्रतिमा ठीक उपमान है। मूंछ डाढ़ी सर्वथा नहीं, हां सिर पर बाल हैं सब अवयव भरे हुये हैं, पिलपिले सिकुड़े झुर्रे नहीं। तद्वत् सुन्दर सुडौल बालक का सा लावण्यमय पुष्पदन्त मुख हो जाता है।]

पुनः श्रीजिनबिम्ब के सन्मुख शुद्धभावों से मन्त्रपूर्वक द्रव्य चढ़ाते जाओ, दो तीन कायोत्सर्ग अवश्य करना अर्थात् धीरे धीरे देर तक लिये जा रहे सत्ताईस श्वास उच्छ्वासों में नौवार नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करो, इससे समीकरण विधान हो जाता है उत्कट संवर होता है शब्द बोलते हुये अर्थ पर भी लक्ष्य रक्खो।

"चउ कर्मकी त्रेसठि प्रकृतिनाश, आठ पहरकी चौसठ घड़ियां, मन्त्र जपो नवोकार, समोशरण, आव्हानन, श्री मन्दिर, जुगमन्दिर, श्रीमन्यु, सुरमन्यु, अरह, अर्घ, अक्षत पूजों श्री जिनराज, चिन्तवन, राष्ट्रीय, आधीन, धर्मध्यान, श्रेयांसनाथ, जैनी" ऐसे अशुद्ध शब्दों का उच्चारण मत करो, प्रमादवश कर्मबन्ध हो जावेगा।

हां इनके स्थान पर यथाक्रम से 'कर्मन की त्रेसठि प्रकृति नाश, आठ पहर की साठिहु घड़ियां, मन्त्र जपो नमोकार, समवसरण, आव्हान, सीमन्धर, युग्मन्धर, श्री मनु, सुरमनु, अर, अर्घ्य, अक्षत सों पूजों जिनराज, चिंतन राष्ट्रिय, अधीन, धर्म्यध्यान, श्रेयोनाथ, जैन इन शुद्ध पदोंका उच्चारण करो।

हां कोई स्त्री होय तो वह अपने को जैनी लिखे। जैसे ब्राह्मीबाई जैनी सुन्दरी जैनी आदि। किन्तु बालक युवा, वृद्ध, पुरुषों को जैन ही लिखना चाहिए। जैसे कि

ऋषभकुमार जैन, अजितप्रसाद जैन आदि। यदि कोई पुरुष भाववेद से स्त्रीवेदी भी होय, तो भी वह कृपाकर अपने को द्रव्यवेद की अपेक्षा जैन ही लिखे, पुरुषत्व या पुल्लिंगत्व को नहीं छिपावे।

हमें "आज कल जैनियों की दशा ऐसी है वैसी है जैनियों में परस्पर कलह हैं, विद्यार्थी सुमतिप्रसाद जैनी, जिनदत्त जैनी, विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है" ऐसे अशुद्ध वाक्योंको सुनकर कष्ट होता है कि पुरुषार्थी, ज्ञानवान्, साक्षात् जैन भ्राता स्वयं जैन होकर जैनी लिखने में नहीं सकुचता है खेद। बहुवचन में जैनों को या जैनों में लिखो। हां जैनी वाणी, जैनीमाता, जैनीभक्ति, सुलोचना जैनी, सीता जैनी ये वाक्य शुद्ध हैं, जैनी शब्दमें स्त्रीप्रत्यय ङीप् है तद्धित का इन् नहीं। मन्त्रोंका तो अवश्य ही शुद्ध उच्चारण करो बहुत लाभ होगा। अलम्॥

यदि तुम्हारी प्रकृति में शुभराग परिणाम है तो मन्दिरजी में घण्टा बजाओ, ध्वजायें देखो, अष्ट प्रातिहार्यों को चितारो, समवसरण विभूतिका चिन्तन करो, जगत् के सुन्दर द्रष्टव्य माने गये खाई सरोवर कोट बगीचा, नाटकशाला रत्नपुञ्ज आदि सभी पदार्थ समवसरण में विद्यमान होते हैं ये सब वस्तुभूत हैं कल्पित या इन्द्रजाल नहीं, स्वर्ग से आते हैं। भाषा या संस्कृतमें जिनेन्द्रकी स्तुति

पढ़ो जाप देओ, थोड़ा ध्यानभी करो। स्वाध्यायमें चरणानुयोग को अवश्य रक्खो अन्य अनुयोग भी श्रेयस्कर हैं।

सामायिक अवश्य करो इससे बड़े जल्दी कर्म नष्ट होते हैं। हां प्रतिक्रमण भी यथायोग्य करना चाहिये किसी विद्वान् या त्यागी महाशय से सामायिक और प्रतिक्रमण की विधि सीख लो सामायिक करते समय मन में अरहन्त सिद्धों के स्वरूप, गुणों का चिन्तन करो, मन को यहां वहां मत भटकाओ। सामायिक करनेके लिये ऐसी जगह बैठो जहां चित्त के व्याक्षेप के कारण न हों सबसे अच्छी बात तो यह है कि अपने मनपर ही काबू रक्खो तुमको किसीने यह कोई ठेका नहीं दे रक्खा है कि जो कोई मंदिर जी में आवे जावे उसकी पहरेदारी करो जैसे कि निमित्त ज्ञानीके कथनानुसार एक राजा ने अपनी लड़की के लिये बलदेव वर को ढूंढनेके लिये सरोवरपर दो विद्याधर नियुक्त कर दिये थे।

तुमने अपने मन को ऐसा ढीला कर रक्खा है कि जो कोई लड़का आता है उसको देखने लग जाते हो, कोई स्त्री आती है तो उसके भूषण वस्त्र सौंदर्य आदिको आनखशिख निरखनेके लिये मनको उधर फैंक देते हो अपने व्यावहारिक कार्यों में मन को ले जाते हो। मन्दिर में

कोई व्यक्ति तुम्हारी दृष्टि से ओझल नहीं हो पाता है मानू मन्दिर से निकलते ही तुम्हारी कोई परीक्षा लेवेगा कि मन्दिरमें अमुक स्त्री आई थी ? कैसे कपड़े पहिने थी ? आदि। मित्रो ! अपने ध्यान में दृढ रहो यदि कोई भोंदू पूछेभी तो तुम बड़ी शेखीके साथ कहदेना कि मैं जाप देने में संलग्न था मुझे कुछ मालुम नहीं।

थोड़ा ध्यान भी करो यथोचित पांच दस मिनट के लिये पहिने हुये वस्त्र और शरीर मात्र के अतिरिक्त सर्व परिग्रह का त्याग कर दो ध्यानमें एकाग्र होकर पंचपरमेष्ठी को चितारो आत्मगुणों पर लक्ष्य दो सिद्धपूजा की जय-माला का अर्थ विचारो, जिनेन्द्र की आज्ञा और कर्मों का फल या लोक—रचनाका चिन्तन करो शान्त मूर्तियों मन्त्रपदों समवसरण आदि का स्मरण करो शुद्ध आत्मामें रमण करो।

मन्दिरजी से लौटते समय धार्मिक पुरुषों की सेवा का भाव लेते आओ—तदनुसार किसी साधर्मी को भोजन कराकर पीछे स्वयं भोजन करो। खाने पीने में उचित्त शुद्धि रक्खो। पानी छाननेका लक्ष्य रक्खो कर्मभूमि के कुआ नदी समुद्र ओस बरफ मेघ सरोवर के सभी पानी छानने योग्य हैं। पांच उदुम्बर गोभी मांस हींग अचार मद्य मधु का सेवन न करो इन्द्रिय लोलुपता न

करो भोगोंमें आसक्ति न बढ़ाओ। थोड़ा विश्राम कर द्रव्योपार्जन के उपाय में लग जाओ।

आजीविका करते समय अहिंसा सत्य अचौर्य अवंचन संतोष से काम लो, धोखेबाजी को हृदय से निकाल दो। परोपकारी या साधर्मी भाईसे अल्प नफा लो, आदर से बैठाओ इससे वात्सल्य अङ्ग बढ़ता है। इस बातको झूठी करदो कि सर्राफ सुनार बजाज दलाल अपने मां बाप से भी नहीं चूकते हैं। जब विद्वान् या त्यागी महाशय तुम को अनर्घ्य अमूल्य तत्वों का धर्मोपदेश निःस्वार्थ देते हैं। तो क्या तुम स्वल्प भी लोभ का संवरण नहीं कर सकते हो ?। साधर्मी के साथ परोपकार के भाव ज़रूर रक्खो ऐसे अवसर भी भाग्यसे ही मिलते हैं। ग़रीब जैनों का आदर करो। यश को बढ़ाना अच्छा है। कषायों के दास मत बनो कषायेंही तुम्हारे अन्तरङ्ग शत्रु हैं। इनको पुरुषार्थ से कम करो।

देखो अजैनों में तो जैनों के निन्दक भरपूर हैं ही किन्तु बहुत दिनों से कतिपय जैनों में भी पण्डितों और त्यागियों की निन्दा करना रोटी-दाल हो रहा है। ऐसा किए विना पेट या मन भरता नहीं है। उन्हों ने भले ही बजाजीमें सैंकड़ों मन चरबी लगा कपड़ा बेचा हो, चांदी सोने में सराफ़ों ने हजारों तोले तांबा गिलैट मिलाया हो,

बनियों ने हज़ारों मन घुने गेहूं, चावल, गल्ला हाथों से बेच दिया हो, साहूकार अन्याय-पूर्वक अनाप सनाप व्याज खा रहे हों, मिल चला रहे हों, ब्लैकवालों ने हजारों लाखों रुपये कमाये हों, वे अभक्ष्य मिथ्यात्व सेवन करें। ऐसे वैश्यों की कोई निन्दा नहीं करता है। पद पद पर हिंसा, असत्य, दम्भ, तीव्र कषायों से जिनका मन सना हुआ है, लोभी लखपति, करोड़पति इनके सभापति बने हुये हैं। इन परीवादकों ने श्री वीरशासन को धुंधला कर दिया है। किन्तु अब युग-परिवर्तन हो रहा है, शीघ्र ही कपट व्यवहार दूर होकर या तो स्फटिकके समान स्वच्छ जैनधर्म चमकेगा अथवा जैन धर्मका स्वरूप बिगड़ कर अधर्म फैल जावेगा "जैनं जयतु शासनम्"

धर्मात्मा जैनों के निन्दक को मिथ्यादृष्टि समझो। 'न धर्मो धार्मिकै विना' ऐसे अनन्तानुबन्धी के कार्य न करो। आप पापमय आजीविका से बचे रहो। स्व-प्रशंसा, परनिन्दा बहुत बड़ा पाप है।

अच्छा और सुनो—धर्म, अर्थ, काम को समयानुकूल और परस्पर अविरुद्ध सेवन करो, धन उपार्जन को ही पूर्ण लक्ष्यबिन्दु मत बनाओ, आय में से छठे भाग को अवश्य धर्म कार्यों में लगा देने का भाव रक्खो।

नवयुवकोंके प्रति विशेषतः यह कहना है कि मिथ्यात्व

अन्याय, अभक्ष्यका त्याग करो, शुद्ध भोजन करो, दुकान पर ताश, चौपड़, मत खेलो, ठलुआ, गप्पी मनुष्यों को मत बैठने दो, शिर खोलकर मत बैठो, जिनेन्द्रोक्त अर्थ पुरुषार्थ के सेवन में विनय रखना आवश्यक है। क्वचित् शिर खोल लेना शिष्टाचार मान लिया है। किन्तु भारतवर्ष में सिर ढकना उपचार विनय है। इन्द्र, चक्रवर्ती, देव विद्याधर स्त्रियां सब पगड़ी, मुकुट, साफा, चादर पहिन कर जिन दर्शन करते हैं। शिरको ढके रहना विनयका कारण है, बङ्गालियों की न्यारी बात है। यदि शिर में अधिक गर्मी हो तो बाल कम रक्खो, अधिक बालों की अपेक्षा पतली टोपी लगाये रहना कहीं अच्छा है, राजवार्तिक में बालों को मलों में गिनाया है। स्त्रियों के समान बालों को काढ़ना या अन्य घना शृङ्गार करना, हंसी, दिल्लगी करना, चांट, अचार खाना आदि से स्त्रीवेद का आस्रव हो जाना बतलाया है। वीर पुरुषोचित कार्य करो, धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थों के करने में सत्य, विनय, शील को पकड़े रहो। गृहस्थ के छः आवश्यक पालो, सप्तव्यसनों का त्याग करो। सट्टा बीजक आदि का व्यवसाय बुरा है, तीव्र राग-द्वेषों को बढ़ाता है इनमें वाणिज्य का लक्षण ही नहीं घटित होता है। कुछ दिनों में तीर्थ-यात्रा अवश्य करो, तीर्थोंपर शांति मिलती है। सत्सङ्ग बनाये रखनेका

भाव अवश्य रक्खो, जैन, जैन-विद्वान्, जैन-त्यागी, और मुनीश्वरों में उत्तरोत्तर निश्छद्म वात्सल्य, भक्ति-भाव बढ़ाते रहो, विश्वासघात, कृतघ्नता न करो। कृतज्ञ, विनीत बने रहो पापों से डरो। टलुआ या दुराचारी लोगों का सङ्ग न करो, नाटक, सिनेमा, रास, नौटंकी आदि के झगड़े में मत पड़ो। स्त्रियोंको भी न पड़ने दो, सिनेमा आदि बड़े भयङ्कर हैं इनसे शारीरिक-शक्ति, उचित स्नेह और ब्रह्मचर्य का घात हो जाता है। देखो इनमें पड़कर तुम लौकिक सुखोंसे भी वञ्चित हो जाओगे। यदि भद्दी आदत पड़ गई हो तो शनैः २ छोड़ दो।

व्यर्थ के अखबार, कहानियां, उपन्यासों में अपने मूल्यवान् मस्तिष्क की शक्तिको बरबाद मत करो, निरर्थक सङ्कल्प विकल्पोंको न उपजने दो। करुणादान से आत्मा मृदु होती है। सायंकाल को भी थोड़ा बहुत सामायिक करो। रातको पञ्च नमस्कार मन्त्र पढ़ो, पश्चात् जिनेन्द्र गुण स्मरण कर सो जाओ, नींद न आवे या बीच में जग जाओ तो बारह-भावनाओं का चिन्तन करो, स्तुति पाठ करो, प्रातःकाल शीघ्र उठने के भाव रक्खो। शुभ भावों से आत्मा में शुभ-शक्तियां प्रकट होती हैं, गद्दी पर लेटे रहनेकी भावनासे तदनुसार वैसे ही गद्दीपर लेटनेवाले बीमार हो जाओगे। क्रोध-मान-माया-लोभ-ईर्ष्या-हास्य, इनको

मन्द करो। कषायों को अत्यल्प करना सबसे बड़ा धर्म है। तीव्र राग को बढ़ाने वाले और ब्रह्मचर्य को नष्ट कर देने वाले शृङ्गारी सिनेमा नाटक तमाशों को न देखने की प्रतिज्ञा कर लो, बड़े लाभ में रहोगे, चमड़े की चीजों का उपयोग न करो।

जहां तक हो अपने समय पुरुषार्थ और धनको धर्म्य-कार्यों में लगाओ, देखें फिर तुम्हारे भाव धर्म में कैसे नहीं लगते हैं, अवश्य लगेंगे। देखो आत्मामें पाप की अपेक्षा धर्म की जड़ गहरी घुस रही है। अच्छा निमित्त मिलते ही झट धर्म की बेलि हरी हो जावेगी। धार्मिक श्रावको! आप उक्त क्रियाओं को करते ही हैं, और कोई कोई भाई इस से भी दशों गुने बढ़िया धर्माचरण करते हैं। हां जो जैनकुल तथा पंचेन्द्रियत्व, जिन-मन्दिर, विद्वत्सङ्गति, त्यागी-सम्बन्ध, यथेच्छ समय आदि योग्य परिकर पाकर भी आलस्य कर जाते हैं, उनके लिये मेरा यह धर्म-पालन का प्राक्कथन है। वे इस क्रम से छः महीने चर्या करेंगे तो अवश्य पक्के धर्मात्मा बन जावेंगे। सर्वत्र कर्मोदय को मत लगाओ सामायिक, स्वाध्याय, जाप्य, ध्यान, जिन-पूजन, परोपकार, इन्द्रियजय ये सब पुरुषार्थ से ही होते हैं।

हां एक बात यह भी सोच लो कि भैंस या गाय का

बच्चा मर जानेपर दूधके बेचनेवाले घोसी नकली चमड़ेसे बने बच्चे को सामने रखकर भैंस, गाय को फुसला लेते हैं। यह दम्भ का दृश्य देखकर हम लोग कहते हैं, कि देखो ये पशु कैसे मूर्ख हैं जो कि नकली बच्चे को अपना बच्चा समझ बैठे हैं। परन्तु हम यह नहीं बिचारते कि हम इनसे भी अधिक मोहजाल में फंसे हुवे हैं। इसी प्रकार भोजक गन्धर्व लोग गाते हैं 'धन जोबन अर राज्य सम्पदा ये सब हैं सावन बदरा रे' इत्यादिक रूप से धन, लक्ष्मी, के औगुन बखानते हैं, अन्य भी दौलतराम जी के वैराग्यमय भजनों को गाते रहते हैं। साथही तत्काल किसी श्रावक को देखकर पैसा दो पैसा मांगने लग जाते हैं, ऐसी दशा में हम उनकी हंसी उड़ाते हैं।

भाइयो! यही अवस्था सभी मूर्च्छावान् जीवों की हो रही हैं। 'ज्यों शिशु नाचत पै नहीं राचत' बच्चा देखा देखी नाचता है गाता है किन्तु अन्तरङ्गसे तन्मय नहीं होता है। जैन भाई भी स्तोत्र, विनती, पूजन, कुछ बोलते रहते हैं और चञ्चल मनुआं न जाने कहांकी सैर कर रहा है। अब बोलो फल किन परिणामों के अनुसार क्या मिले? जब कि 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' यह सिद्धान्त है।

जैसे भावलिंगी मुनियों से द्रव्यलिंगी साधुओं की

संख्या अधिक है। तद्वत् श्रावक श्राविकाओं, त्यागी, पण्डितों, श्रोताओं छात्रों, क्षुल्लकों में भी तदाभासों की संख्या विपुल है। सच्चे मुनि वे हैं जो एकबार में अन्तर्मुहूर्त से अधिक निद्रा नहीं लेते हैं जगकर झट सातवें गुणस्थान में ध्यानारूढ हो जाते हैं। यदि मुनि चल रहे हैं उपदेश दे रहे हैं भोजन कर रहे हैं तो आधा घण्टा पीछे पांच मिनट स्थिर ध्यान अवश्य कर लें, क्योंकि छठे सातवें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है। सातवें से छठे का दूना है मुनित्व छोड़कर चौथे में आ जांय तो न्यारी बात है। इसी प्रकार श्रावकभी अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधमान माया लोभ का उदय न आने देवें, प्रशम, संवेग अनुकम्पा आस्तिक्य रक्खैं। राग-द्वेष अल्प करैं अभक्ष्य त्यागें सन्तोष दया दान पूजनका लक्ष्य धारैं दूसरों की निन्दा घृणा नहीं करैं। इससे अन्यथा प्रवर्तने वाला श्रावकाभास हैं। संस्थाओं वाणिज्य परोपकार दान पूजन क्षमा-प्रदर्शन भोजन का आदर किसीकी प्रशंसा करना धनिकचाटुकार परस्त्री को न देखना ध्यान मुनि-भक्ति समवेदना दिखलाना इत्यादिक लौकिक पारलौकिक आचार विचारों में भी द्रव्यलिङ्ग भावलिङ्ग के दुर्वृत्त चिपट बैठे हैं। यह कपट काठ की कसैंड़ी कब तक चलेगी?

प्रतिक्षण किसी न किसी वस्तु की वाञ्छा रखने

वाले भाइयो ! आपने पुण्य संचय किया भी कहां है ? आज भी कोई कोई ज्योतिषी या खण्ड-अष्टांग निमित्त ज्ञानी यह बता सकते हैं कि पानी बरसेगा या नहीं बरसेगा धन किस स्थान पर गढ़ा हुवा है। चांदी सोना गेहूं रुई अलसी आदि तेज़ या मन्दे जावेंगे अमुक मुहूर्त में यात्रा करने से लाभ होगा चोरी गई वस्तु इस दिशा में है। इत्यादि सब कुछ होते हुवे भी आप एक पुण्य बिना लाभ नहीं उठा सकते हैं बाह्यजन भी कह देते हैं कि 'सकल पदार्थ या जग मांहीं पुण्य हीन नर पावत नाहीं' किसी २ घरमें दस-बीस पीढ़ीसे धन गढ़ा रहता है दरिद्री उस मकान में दुःख भोगता रहता है मकान की बिक्री करते ही नींव खोदते समय क्रेता को धन मिल जाता है कचित् तो धन बता देने पर भी नहीं मिल पाया है अब भी इस वसुन्धरा में लाखों स्थानों पर पुष्कल-धन गढ़ा हुवा है जिसके भाग्य में बदा होगा उसीको मिलेगा। धन्यकुमार चरित्र को पढ़ो।

जैनगुरु पद पद पर उपदेश देते हैं कि इच्छाओं को कम करो पुण्य-अनुसार होने वाले धन पुत्र आदि सब परिग्रह जैनी तपस्या के विरोधी हैं। जैनों का अन्तिम लक्ष्य यदि मूर्च्छा में फंस जाना होता तो तीर्थंकर इस परिग्रह का त्याग नहीं करते। जब कि जैनों की अपेक्षा

अजैनों के पास आपकी चाहने योग्य चीजें बहुत हैं तब जैन-धर्मके साथ उन परिग्रहोंकी प्राप्ति का कार्य कारण भाव तो नहीं रहा। देखिये पारसी, भाटिया, भार्गव, बौहरे आदि जातियों में धन अधिक पाया जाता है यवन आर्यसमाजी ईसाईजनों में विवाह अधिक होते हैं अनेक अर्गलों के न होने से सन्तान भी बहुत पाई जाती है। प्रत्युत सम्राट, बादशाह, वाइसराय, गवर्नर, राजा, राष्ट्रपति, हाईकोर्ट के जज, महासचिव अन्य बड़े २ अफसर, हाकिम बढ़िया वकील बैरिष्टर, महाविद्वान्, चांसलर, वाइसचांसलर कमाण्डरइन्चीफ कमिश्नर, डी-आई-जी, आई जी, महामहोपाध्याय इत्यादि उच्चपद भी आज किसी जैन को प्राप्त नहीं हैं। अपितु जैनोंमें प्रकाण्ड देशनेता, वैज्ञानिक, व्यापारी, प्रकृष्ट वैया-करण, ज्योतिर्वित्, मांत्रिक-तांत्रिक, वक्ता, लेखक, अभि-नेता, गणितज्ञ, पोत-वणिक्, स्थपति, मल्ल, विमानविद्यावायुयान निर्माता, अर्थशास्त्रज्ञ, अभिरूप, उद्भट-धनाढ्य, कलावित् इत्यादि वर्तमान में कोई उच्च कोटि का नहीं है। क्षुद्र-पुञ्जिआओं को कौन पूछे ? तो फिर आप जैन-धर्म की शक्ति से छोटे छोटे मुकद्दमा जीतना या तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति के लिये जिनेन्द्र से क्यों प्रार्थना करते हो ?

श्री जिनेन्द्रने तो यह दुकान पहलेसे ही उठा दी है। सर्राफ की दुकान से बन्दूक मोल लेना चाहते हो जिस कषाय

या स्वभाव का जो जीव होता है उसका वैसे रूपायवान् या तादृश स्वभाव वाले से मेल खा जाता है। हां जिनेंद्र या उनके अनुयायी जैनोंके यहां अब केवल महा-महिमान्वित सदाचार आत्म-विशुद्धि, संवर, निर्जरा, सम्यग्दर्शन, मोक्ष-मार्ग ही पाया जाता है। मात्र इनका क्रय-विक्रय करो। हेय उच्छिष्ट दुःख-सम्पादक परिग्रहों का नहीं। वर्तमान में पुण्य-पाप का फल यथायोग्य होता रहने दो इष्ट अनिष्ट बुद्धि मत करो। जब कि धर्म सेवनके निमित्त नैमित्तिक भावका प्रवाह दूसरे ढङ्ग से बह रहा है फिर आप यह अज्ञता क्यों कर रहे हो लात मारो क्षणिक बहिरङ्ग विभूतियों पर, तथा साथ ही नाश कर दो उनके कारण राग-द्वेष विभावों का। बस परिपूर्ण स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लेने का यही मूलमन्त्र है। हां एक बात है कि अतिशय क्षेत्रों पर अनेक देव-देवियां दर्शन पूजन करने आते हैं। किसी जिनेन्द्र-गुण-वत्सल देवने आपका कार्य भी बना दिया यह उचित है। जैसे कि सीता, सुदर्शन, समन्तभद्रका मनोरथ पूर्णकर दिया बताया जाता। अथवा श्री महावीर जी की स्तुति से तुम्हारे दुष्कर्म-भार हलके पड़ जांय किन्तु यह स्वार्थ सध जाना सर्वदेश सर्वकाल और सर्व व्यक्तियोंके लिये नियम रूपसे लागू नहीं होता।

हजारों मनुष्य भग्नमनोरथ होकर अपने कर्मों को रो

रहे हैं। यदि ऐसे ही ऐरे गैरे सब का कार्य बन जाये तब तो लन्दन, न्यूयार्क, बर्लन, पेकिङ्ग, टोकियो, सिंघापुर, पैरिस, कोलम्बो, मुम्बई, कलकत्ता, देहली आदि नगरों जैसी भीड़ उन्हीं अतिशयक्षेत्रों पर लग जाती। कष्ट निवारण चाहने वाले या आशावान् स्वार्थीजन करोड़ों अरबों विद्यमान हैं कोई दरिद्र, रोगी, अल्पायुः अपुत्र, आजीविकाहीन, विजित, मूर्ख रहने ही न पावे, सभी जीव सम्पन्न, नीरोग, बलाढ्य, ज्ञानवान् यशस्वी, विजेता, परीक्षोत्तीर्ण बन जावें। आर्य-समाजियों द्वारा सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान और दयालु माने गये ईश्वर का निराकरण करने वाले जैन विद्वान् इन युक्तियों का प्रयोग करते हैं। खेद, बन्धुओ! आत्म-कल्याण की ओर झुको निस्तत्त्व और त्याज्य अतिशयों का व्यामोह छोड़ो।

जिनेन्द्र की भक्ति से शुभ शुद्धोपयोगों को खरीदो। यदि फ़िर भी विभूतियां तुम्हारे मन में बसी हुई हैं तो वीतराग की भक्ति का दम्भ छोड़ो, रागी-द्वेषी देवों की उपासना करो। नामजैन या कपटधारी जैन बनकर अनन्त-संसार को बढ़ाना उचित नहीं है। कुसङ्गमें पड़कर कुछ काल से जैनों में भ्रष्ट-जैनत्व आ घुसा है। उसका परिहार शीघ्र करदो। पीव (मवाद) जितनी जल्दी निकाल दिया जाय उतना ही अच्छा है। तमाशा देखने की इल्लत

छोड़ो। कितने ही मतिमन्द बुखार न आने की शर्त पर ही धर्म छोड़ने को तैय्यार हो जावेंगे आज पचास रुपये मासिक नौकरी लग जानेकी होड़ पर अन्य धर्मोंमें खिसकने के लिये तय्यार हैं। हजारों लोग केवल विवाह या आजीविका के लोभ से विधर्मी बन चुके हैं। क्या पूछते हो ? अज्ञानी, मोहीजीव, जो कुछ कर बैठे वही थोड़ा है। एक पाप का दरवाजा खुलते ही सेनाके सदृश अनेक पाप घुस आते हैं।

आसक्त जीवो ! तुम भक्ति करना भी क्या जानते हो ? श्री समन्तभद्राचार्य के बृहत् स्वयम्भू-स्तोत्र को पढ़ो इनको रत्तीभरभी विषयों सुखोंकी आकांक्षा नहीं है। सच्ची भक्ति यह है जो कि स्वल्प भवों में मोक्ष की प्राप्ति करा देती है। भक्तामर, कल्याण मन्दिर स्तोत्रोंके भक्तिरस पूर प्रवाहित पद्योंकी उत्प्रेक्षायें, समासोक्ति, रूपक, ध्वनि, रस, अलङ्कार, ऋद्धि मन्त्रों पर गहरी दृष्टि डालो फिर अपनी स्वार्थ-पूर्ण नीरस भक्त्याभास की निःसारता जान सकोगे। कल्याणमन्दिर में लिखा है कि—

यद्यस्ति नाथ भवदंघ्रि—सरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि संतत—संचितायाः।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेपि ॥

हे भगवन्! हम तो ये जानते हैं कि भक्ति का फल भविष्यमें कुछ होनेवाला नहीं है। वह आत्माकी तदात्मक परिणति है, जो कि तत्काल निर्मलता कर देती है। बहिरङ्ग कुछ लिया, दिया नहीं जाता है। प्रमाण का साक्षात्फल अज्ञान निवृत्ति है जैसे कि विषयी जीव को इन्द्रियों का भोग फल तत्काल सुख स्वरूप भासता है। फिर भी हे नाथ! भक्तिका भविष्यफल यदि कुछ है तो हे शरण्य मैं भक्ति का फल यही चाहता हूं कि अगले भवों में भी तुम्हारी शरण ही ग्रहण करता रहूं। इस रत्नत्रय से ही मुझे झटिति मोक्ष प्राप्त हो जावेगी 'मेरे न चाह कुछ और ईश रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश' आत्माका ही धर्म और आत्मा में ही फल प्राप्त हो गया, यों बाह्य-फल की कुछ इच्छा मत रक्खो।

इसका एक दृष्टान्त यों समझ लीजिये वैष्णवों के यहां ऐसा नियम है कि 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' 'नित्य-नैमित्तिक कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया' अर्थात् सन्ध्या वन्दन प्राणायाम तर्पण, प्रोक्षण, आचमन, द्वादशाङ्ग स्पर्शन को प्रतिदिन करो, करने से फल कुछ नहीं मिलेगा, न करोगे तो पाप लगेगा। यों पापाभाव ही फल हुआ 'अकुर्वन् विहितं कर्म प्रत्यवायेन लिप्यते' देखो माता-पिता अपने बच्चे को पालते शिक्षित करते हैं, मरने पर सर्व—स्वार्पण

कर देते हैं। इस क्रिया का फल कुछ नहीं है। यदि माता पिता अपना कर्तव्य न पालें तो अपयश या कुपात्र सन्तान–जन्य दुःख उनको अवश्य मिलेगा।

गवर्नमेन्ट म्युनिसिपैलिटी और पुलिस की नियमित धाराओं या कानूनों को अवश्य पालो, कानून के पालने से सज्जनों, पण्डितों या प्रजावर्ग को कोई रायबहादुर सी आई-ई, ओ-बी-ई, सरनाईट, तर्क-पञ्चानन, पूज्यपाद, महामहोपाध्याय, वादीभ-सिंह रायसाहबादि पदवियां सन्-मान या बीस हज़ार पच्चासहज़ार रुपया इनाम नहीं मिल जाता है हां राजनीति (क्रिमिनल कोर्ट या सिविल कोर्ट) की धाराओं का उल्लंघन करदेने से दण्ड अवश्य प्राप्त होगा। दृष्टान्त के एक देश को पकड़ो इसी दृष्टान्त के अनुसार धर्म नहीं पालने वालों को दुष्कर्म-जन्य लौकिक पारलौकिक अनेक कष्ट भोगने पड़ेंगे। हां धर्म-पालन करने से बाह्य-फल कुछ नहीं प्राप्त होगा केवल स्व-संवेद्य अभ्यन्तर सुख और कर्मोंका संवर निर्जरा हो जाना फल मिलेगा। आप धर्म पर अड़े रहो, स्वकीय प्रयत्न से कैवल्य प्राप्त कर परमात्मा बन जाओगे। इस समय भी विदेह क्षेत्रों में आठ लाख अठानवे हज़ार पांच सौ दो केवलज्ञानी विद्यमान हैं। इनमें बीस तीर्थंकर हैं। धर्मानुरागी बन्धुओ! सब से प्रथम इस धन की आशा

का परित्याग करो, कोई अपने पेटके लिये आवश्यक आधा सेर अन्न अथवा शीत लज्जा–निवारणार्थ स्वल्प वस्त्र के लिए तो महावीरजी से धन मांगता ही नहीं। हां लड़का लड़की विवाह मकान या मौज मारनेका प्रयोजन रखकर अधिक धन मांगा जाता है देखो राग–द्वेषमय ये विवाह मैल सपाटा मौज मारना हवेलियां बनाना गरिष्ठ–भोजन स्वर्ण–आभूषण आदि तुम्हारे हित-स्वरूप नहीं है। ये सब आपके मोक्ष मार्ग को बिगाड़ देने वाले हैं।

श्री आदीश्वर महाराज ने सब कुटुम्ब विभव को लात मार दी थी उनके सुपुत्र भरत और बाहुबली ने भी परिग्रह का तृणवत् परित्याग कर दिया था आत्म-हितमें लग गये शान्तिनाथ कुंथुनाथ अरनाथ ने चक्रवर्तीपन की विभू–तियों को छोड़ दिया था। और लग गये स्वहित साधना में। शांतिनाथ चक्रवर्ती के राज्य करते समय असंख्यात देवोंका अधिपति इन्द्र द्वारपाल के समान छड़ी लिये हुवे दरवाजे पर खड़ा रहता था। उस नौ निधि चौदह रत्न चौरासी लाख हाथी आदि विभूतियों के त्याग का विचार कीजिये। वज्रदन्त चक्रवर्ती को वैराग्य होते ही उनके सहस्र लड़कों की प्रशंसा करो जिन्हों ने पिता के लाखबार आग्रह करने पर भी चढ़ रहे यौवन में राज्य वैभव को एकदम छोड़ दिया तब चक्रवर्ती को विवश होकर छह

महीने के पोते का राज्य-तिलक करना पड़ा कतिपय पुत्रों ने तो पिता से प्रथम ही अष्टकर्म नष्ट कर दिये थे। 'नमोस्तु तेभ्यः परमात्मभ्यः' यह है धर्म का प्रत्यक्ष फल। ढाई हजार वर्ष पूर्व वारिषेणने भरी युवावस्थामें राजविभूति और बत्तीस सुन्दर स्त्रियों को छोड़कर वैराग्य धारण कर लिया था। पुष्पडाल के समान हम लघु जन व्यर्थमोह तृष्णा में पड़े हुवे हैं। श्री महावीर स्वामी के कहे हुवे ठोस धर्म के रहस्य को समझो। अत्यधिक आनन्द प्राप्त होगा।

अन्य धर्माभासों से जैन धर्मका मार्ग ही निराला है जैनधर्मी को प्रथम से ही वीतराग देव गुरु धर्मतत्वों की श्रद्धा रखनी पड़ती है आत्मा को परद्रव्य से भिन्न जानना पड़ता है। आटा दाल दूध लड्डू जल आदि की तीन दिन पांच दिन आदि की मर्यादा को पालना पड़ता है। जैन रात्रि-भोजन त्याग पानी छानना आचार मुरब्बेका त्याग इनका विचार रखता है। जुआ मांस मद्य चलित रस की आखड़ी करता है। जैन धर्म में कर्म-सिद्धान्त स्याद्वाद आकिंचन्य निःकांक्षा अनेकान्त शान्तिरसप्रेम वैराग्य सम्वेग प्रशम गुप्तियां क्षमा आदि उत्कट रूप से पाये जाते हैं। किसी किसी मत में प्रभु अवतार लेकर दुष्टों को जानसे मार देना बताया है जब कि जैन शासन

में तो जिनेन्द्र भगवान् दुष्टों को मोक्ष–मार्ग में लगा देते माने गये हैं। जैनों को ईश्वर-वाद अभीष्ट (पसन्द) नहीं है। शुद्ध आत्म-ध्यान द्वारा स्वावलम्ब से ही मुक्ति होती है। देव, गुरु निर्ग्रन्थ हैं। रागी-द्वेषी देवों के ही स्त्री सवारी, लड़का, गहना, कपड़ा, निग्रह करना हो सकता है कृतकृत्य दिगम्बर जिनेन्द्र भगवान के नहीं।

अहिंसा उच्चकोटि की जैन-धर्म में ही है एकेन्द्रिय जीव या चित्रलिखित, मुर्गा, मछली आदि का मारना दोष माना गया है रोग के कीटाणुओं को भी सङ्कल्प से जैन नहीं मारते हैं जब कि अन्यत्र रोगों के कीड़ों को मार डालने का ही लक्ष्य रखा जाता है कहां तक कहें जैन–धर्म की एकएक बात अनुपम रत्न है, अन्यत्र दुर्लभ है। महान् भाग्य से इस जीव ने मानव पर्याय और जैन-धर्म पाया है अतः त्रियोग से धर्म–साधन में जुटे रहियेगा।

बन्धुओ! जीवों की दया पालना भी श्रावक का मुख्य धर्म है। स्वर्गों में नरकों में विकलत्रय जीव नहीं हैं। इनका मांस-स्थानीय पदार्थ प्रासुक है वहां पानी छाना नहीं जाता है हां मध्यलोक में ये पाये जाते हैं। अतः कहां बादर निगोद है? कहां विकलत्रय हैं? कहां संज्ञी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय हैं? कौन योनिस्थान है? इन बातों का ध्यान रक्खो। अचार, मद्य, मांस, मर्यादा–

चलित पदार्थों का नहीं खाना पीना ये सब जीव रक्षा के लिये हैं। त्रसघात, बहुघात को बचाओ हिंसा कर देनेसे रत्नत्रय बिगड़ जाता है। यहां ढाई द्वीप में जितने जीवित द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर-धारी जीव हैं। या उनके मृत अङ्ग उपाङ्ग हड्डी, मांस, चम आदि अवयव हैं उनमें त्रस जीव विद्यमान हैं। असंख्याती भोगभूमियों में भलेही बाहर विचरने वाले लट चींटी भौंरा आदि विकलत्रय न पाये जांय किन्तु वहां के तिर्यंच या मानवों के हड्डी, मांस, रक्तमय शरीर में त्रस अवश्य हैं। बादर निगोद भी हैं। इनका मांस या रक्त प्रासुक नहीं है। तीर्थकरके शरीर में भी गर्भ, जन्म, कुमार राज्य, तपस्या अवस्थाओं में त्रस जीव पाये जाते हैं। हां केवलज्ञान अवस्थामें नहीं हैं। आहारक शरीर, परमौदा-रिक शरीर, पृथ्वी अप् तेजः वायु तथा देव नारकियों के शरीरोंमें न त्रस हैं, न बादर निगोद है। सूक्ष्म निगोद तो सब जगह ठसाठस भरा है उसकी हिंसा होती ही नहीं है। यों विकलत्रय और बादर निगोद से रहित हो रहे एकेन्द्रिय पृथ्वी जल तेजः वायु कायिक सजीव धातुओं से या एकेन्द्रिय से भी रहित निर्जीव पृथ्वी आदि से श्रावक या मुनियों की लौकिक शुद्धि हो जाना माना गया है। मुनि अचित्त पदार्थ का उपयोग करते हैं। अशक्यानु-

थान की न्यारी बात है।

कर्म-भूमि की मानवी स्त्रियों के गोपनीय अवयवों में लब्ध्य-पर्याप्तक मनुष्य भी पाये जाते हैं। जो कि श्वास के अठारहवें भाग कालमें मर जाते हैं। कभी २ जिनदृष्ट असंख्याते वर्षों का अन्तर भी पड़ जाता है अर्थात् करोड़ों अरबों वर्षों तक कर्म-भूमि की किसी भी स्त्रीके कक्षा कुचाधस्तनभाग, नाभि, योनि, त्रिवलि में एक भी लब्धि अपर्याप्त मनुष्य नहीं पाया जाता है—"सवज्ञः सर्ववित्"

मुनिराज के पादतल के चर्म में विकलत्रय जीव हैं और मन्दिर में जड़े हुये पत्थर के चौकाओं में पृथ्वीकायिक जीव हैं। पकेचूना, ईंट, सीमिन्टमें नहीं। यह ख्याल रखना कि पृथ्वी कायिक जीव की अवगाहना घनांगुल का असंख्यातवां भाग है यानी मोटर कार के पीछे जो धूल उड़ती है उसके एक कणसे भी छोटी है, तब तो पांव धरते ही चरण की उष्णता से तथा कठोर पत्थर के दबाव से स्थावर त्रस हिंसा हो जाना अनिवार्य है। मुख, जीभ, तालु से, उष्ण जल, भोज्य का संसर्ग हो जाने से अथवा रगड़ लग जाने से यों संयमी को भी जीव-वध करनेका प्रसङ्ग आता है। ताली बजाना, चूतड़ टेकना, चुटकी चटका देना, चलना, बोलना आदि चेष्टायें भी सावद्य क्रियायें हैं। किन्तु प्रमाद योग न होने से पापास्रव नहीं हो पाता है हां अत्यल्प होता

है। "मरदुव जियदुव जीवो" "विश्वग्जीवचिते लोके" । यह जैन सिद्धांत है । हां परमौदारिक शरीर और आहारक शरीर से यह दोषापत्ति नहीं है इसी ही कारण परिहार-विशुद्धि संयम वालों को भी चतुर्मास में एक स्थान पर योग धारने का नियम नहीं है ।

भ्राताओ ! आज कल दिखाऊ धर्म-पालन अधिक है यश के लिये धर्म-कार्यों में भी विवाह आदि के समान घुड़ दौड़ हो रही है । वीतराग भगवान्के उपासक आज राग-द्वेष के पचड़ों में उलझ रहे हैं । एक परिचित जैन भाई ने मुझ से कहा कि पण्डित जी मैं पांचबार अभीष्ट कार्य-सिद्धि के लिये जिनेन्द्र स्मरण और भगवान की आराधना करके गया, मेरा इष्ट कार्य नहीं सधा । एकबार मैं जिन-स्मरण या नमस्कार मन्त्र बोले बिना ही चला गया तब मेरा कार्य ठीक हो गया- बोलो ऐसे धर्ममें क्या रक्खा है ? । मैंने उन्हें इस दृष्टिकोणसे ही बहुत समझाया कि पहले अन्तराय कर्मका तीव्र उदय था । अतः कार्य नहीं बना और पीछे के कार्य में तुम जिनेन्द्र स्मरण करके जाते तो वह कार्य और भी अधिक बढ़िया सिद्ध होता ।

मित्रवर्य ! कर्मों का उदय किसी को नहीं छोड़ता है वे मेरी बात को मान गये, किन्तु धर्म और कार्य-सिद्धि के कार्य-कारण भाव में वे अन्वय व्यतिरेक व्यभिचार

उठाने में नहीं चूके। पक्के धर्मात्मा होते तो ऐसी छोटी बात मन पर कभी न लाते, सातवींबार फिर महावीर का नाम लेकर गये तब सर्वोत्कृष्ट–कार्य सम्पन्न हो जाने पर वे सन्तुष्ट हुये। भाइयो! धर्म इतना कठिन नहीं है कि जितना हम लोगोंने हौवा मान रखा है। विषय-वासना में फंसे रहने के कारण कठिन प्रतीत हो रहा है। आपको जब धर्माचरणका आनन्द आ जायेगा, तो आप लौकिक झंझटों में उलझने पर भी नहीं लगोगे, समाधितन्त्र में लिखा है कि—

व्यवहारे सुषुप्तो यः, स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्त्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे॥७८॥

भावार्थ–जो खाना, कमाना, विनोद करना, भोग, उपभोग, उद्यान–क्रीड़ा प्रयोग करना आदि व्यवहार के कार्यों में सो रहा है वह आत्मा के विषय में खूब जग रहा है और जो बहिरङ्ग व्यवहार प्रकरणों में जागृत है वह बहु-आरम्भी जन आत्मीय धर्म-कार्यों में गाढ़ी नींद ले रहा है।

जैन भ्राताओ! आप धर्म शास्त्रों का अध्ययन करो पुण्यबन्ध से सम्बर अनन्तगुणा बढ़िया है, कहां संसार मार्ग और कहां मोक्ष मार्ग? शून्य से एक अङ्क को कितना गुणा बड़ा कहा जाय। आपके प्रधान 'दर्शन' तत्त्वार्थाधिगम में संवरकी बड़ीभारी प्रतिष्ठा मानी है तथा

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वरूप धर्म द्वारा "सम्यग्दृष्टि-श्रावकविरतानन्तवियोजक" इत्यादि सूत्र से दस स्थानोंमें असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा का होना बतलाया है। पुनः "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-मार्गः" इस सूत्रानुसार संवर और निर्जरा हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति अनिवार्य है। इससे अधिक और धर्म से आप क्या चाहते हैं? त्यागी लोग तो पुण्यबन्ध को पसन्द नहीं करते हैं।

मैं ने एक बार अतिवृद्ध त्यागी प्रभुदयाल जी से बातों बातों में यों कह दिया, कि त्यागी जी आप तो मर-कर स्वर्ग ही जायंगे, एक भवतारी लौकान्तिक हो जाना तो कठिन है। वहां आप को अनेक भोग भोगने पड़ेंगे, कतिपय देवांगनायें मिलेंगी। औरभी मैंने स्वर्ग की विभूति का या सैर सपाटा करने का अभिराम वर्णन किया। उस महिमा को सुनकर उन्हों ने नाक, मुंह इतना सिकोड़ा जितना कि एक दम दो तोला लाल मिर्च खा जाने पर भी नाक, मुंह नहीं सिकोड़ा जाता है। वे बड़ी कातर अरुचिपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देर तक देखते रहे और कहने लगे, कि पण्डित जी हम इन झंझटों को सर्वथा नहीं चाहते। कहां यह वैराग्य और कहां वह शृंगार।

श्री समन्तभद्राचार्य, अकलङ्क देव, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, वट्टकेर, जिनसेन आदि महान् आचार्य कहां

गये और स्वर्गों में आज कल क्या कर रहे हैं ? लौकिक मौज भोग रहे हैं। इनमें से कोई तो निकट में मोक्ष जाने वाले हैं।

"अट्ठ हरी णव पडिहर चक्कि चउक्कं रहेय बलभद्दो।
सेडिय समन्तभद्दो तित्थयरा होन्ति णियमेण"।

त्रिलोकसार में सात्यकि पुत्र महादेव को भविष्य चौबीसी में अन्तिम तीर्थङ्कर (अनन्त वीर्य) हो जाना कहा है। ये तीर्थङ्कर पूर्व जन्मों में असंख्य जीवों का उद्धार हो जाने की भावनायें भावते हैं। ये वैमानिक देवों से आते हैं या प्रथम द्वितीय तृतीय नरक से भी आते हैं नरकों में छः मास प्रथम इनका दुःख—निवारण हो जाता है स्वर्गों में इनकी माला नहीं मुरझाती हैं कान्ति और आज्ञा का भङ्ग नहीं होता है

कर्मों को जीतने वाले जिनेन्द्र के भक्तपुरुषो ! आप अपना ध्येय उच्च बनाइये इस निकृष्ट पंचम कलि काल में हम हीन संहनन, अल्पज्ञानी, संयमहीन, जीव क्या भक्ति कर सकते हैं ? क्या भाव लगाओगे ? और आप द्रव्य भी कितना चढ़ाओगे ? थोड़ासा द्वादशांग-वेत्ता सौधर्म इन्द्र की सरागभक्ति पर लक्ष्य दीजिये, जो कि सहस्रनाम या अन्य स्तोत्रों द्वारा भगवान की भक्ति में तन्मय हो जाता है, मणियों मोतियों से भरे थाल चढ़ाता है एक साथ १२॥ करोड़ बाजों के साथ जिनेन्द्र भक्ति के गीत गाता

है उसकी आज्ञा से अनेक देवियों के अखाड़े नाचते हैं मृदंग पर धम बजा कर पुनः शीघ्र पांचों मेरुओं की वन्दना कर मुरज पर दूसरा शब्द किट् बजाता है। इन्द्राणी भी नृत्य करती हुई भगवान् के गुणानुवाद गाती है। ये इन्द्र, इन्द्राणी, कोई पुत्र, यशः, मुकद्दमा जीतना, आजीविका लग जाना आदि की चाह नहीं रखते हैं निःस्वार्थ हो कर जिनेन्द्र भक्ति द्वारा सम्यग्दर्शन को पुष्ट करते हैं। मात्र मुक्ति को चाहते हैं तभी तो सौधर्म इन्द्र, इन्द्राणी, दोनों ही एक भव लेकर मोक्ष प्राप्त कर लेते है। यही महावीर पूजा का सच्चा फल है। एक इन्द्र की उम्र में चार कोटा-कोटी यानी चालीस नील इन्द्राणियां क्रम से मोक्ष चली जाती हैं तब इन्द्र नर पर्याय लेकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

पाठकगण! कोई आश्चर्य न करें सन् १६११ में हुये दिल्ली दरबार के समय मेरी आंखों देखी बात है कि जिस समय सम्राट् पंचम जार्ज महोदय ने रेलगाड़ी से उतर कर देहली से स्टेशन पर पांव रक्खा, उसी समय एक सैकिन्ड में डेढ़लाख बन्दूकों की आवाज़ द्वारा बादशाही सलामी दीगई, साथ ही अनेक तोपों के गगन-भेदी शब्दों द्वारा इन्द्रप्रस्थ व्याप्त होगया था हज़ारों बाजे एक साथ बजे थे। सम्राट् के दरबार में आते ही छह सौ देशी

राजाओं और ५४ लाख दर्शकों ने युगपत् विनयक्रिया की थी। शासन द्वारा स्वायत्तीकरण (कन्ट्रोल) अच्छा होना चाहिये इससे भी अधिक बन्दूकों, तोपों या बाजों के शब्द एकक्षण में किये कराये जा सकते हैं।

इन्द्र के असंख्य देवों पर हो रहे शासन की तो महिमा ही नहीं कही जा सकती है। इन्द्र के साथ तेईस कल्प वासी इन्द्र, चालीस भवन-वासी इन्द्र, बत्तीस व्यन्तर इन्द्र, तथा असंख्य ज्योतिष्क इन्द्र तथा इनका परिवार असंख्यातासंख्यात ये सब एक साथ पंचांग नमस्कार, अष्टांग प्रणाति, सिर पर हस्त-कुड्मल लगाना आदि क्रियायें करते हैं। पूजन का पद्य बोलते ही जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, मुक्ताफल आदि को सब युगपद् चढ़ाते हैं। मोतियों, मणियों के थाल भर भर के चढ़ाये जाते हैं।

हम चार, सोलह, चौसठ आदमी मिलकर पूजन करते हैं, चारों ओर वेदियां बना कर ठाठ से विधान रचते हैं तब ही बड़ा आनन्द आता है, चतुर्मुखपूजन में तो भारी आल्हाद होता होगा, अष्टान्हिका पर्व में तिसी प्रकार चारों निकायों की असंख्य देवियां देव दो २ पहर चारों ओर के क्रम से नन्दीश्वर द्वीप में जाकर जिनार्चन करते हैं। उस समुदित पूजन के आनन्द को एक चर्म जिह्वा से नहीं कहा जा सकता है। हमने सहारनपुर में

रमज़ान के अवसर पर अन्तिम शुक्रवार को जुम्मामस्जिद के सामने अस्सी हज़ार मुसलमानों की युगपत् नमना, उठना, पुनः अर्द्ध नम्र होना, हाथों को छाती से लगाना, घोंटुओं से चुपटाना, कान छूना आदि क्रियायें एक साथ होती देखी हैं। अब आप असंख्य देव, देवियों की भक्ति चेष्टा का अनुमान कर लीजियेगा। हम आप भी असंख्यबार देव देवियों की पर्याय में इस आनन्द को लूट चुके हैं। हां भाव भक्ति नहीं कर सके अन्यथा भव भ्रमण में क्यों रुलते अनन्तबार मुनिलिङ्ग धारण कर उपरिम ग्रैवेयक तक जा चुके हैं।

यह बात अवश्य है कि मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि देवों की अपेक्षा श्रावक या मुनियों की जिनभक्ति बढ़िया है वह बढ़ियापन रत्नत्रय की वृद्धि का ही पकड़ा जायेगा अन्य रागद्वेषमय कामनाओं का नहीं। कोई २ तीव्ररागी मुग्ध पुरुष धरणेन्द्र, पद्मावती, चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी के मंत्राराधन, कल्प या साधना में भी अनुराग करते हैं और कुछ लौकिक प्रयोजनों को साध भी लेते हैं किन्तु वे सब दुधारी तलवारें हैं, इनकी सिद्धि में अखण्ड ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। निष्णात गुरुओं का सत्संग चाहिये। पहिले भट्टारकों ने मन्त्रों की शक्ति से जैन धर्म की प्रभावना की थी। यदि वे ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय,

परमविद्वान् भट्टारक मन्त्र, तन्त्र शक्तियों से काम न लेते तो स्यात ही जैन धर्म का अनुयायी आज भारतवर्ष में कोई दृष्टिगोचर होता। यन्त्र, तन्त्र, मन्त्रों में भारी शक्ति है। देव भी अनेक कार्यों को साध सकते हैं इसका मैं निषेध नहीं करता हूं। वात्सल्य और प्रभावना के लिये उक्त कार्य प्रशस्त हैं।

जगत् में सभी प्रकार के मनुष्य हैं। परन्तु मुमुक्षु पुरुषों को उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन, मारण मन्त्रों के प्रसंग में तो कथमपि नहीं पड़ना चाहिये। ये तो सर्वथा निषिद्ध हैं ही। हां काम्य मन्त्र भी रागवर्द्धक होने से हेय माने गये हैं। भव्यजीवो! पंचनमस्कार मंत्र का ही आराधन करते जावो। शुद्धमन से निष्काम होकर अपराजित मंत्र को जपा जाय, वह बड़ा भारी पुरुषार्थ है। नमस्कार मंत्र की स्तुति करते हुये कहा गया है कि—

"आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं, विपदां चतुर्गति-भुवां विद्वेषमात्मैनसां।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयतितो मोहस्य सम्मोहनं,
पापात्पंच-नमस्क्रियाक्षर-मयी साराधना देवता॥

भावार्थ—नमस्कार मंत्र ही आराधना करने योग्य देवता है बस कर्म क्षय का लक्ष्य रक्खो। श्रावक धर्म या मुनि-धर्म का पालकर मात्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और

सम्यक्चारित्र रूप आत्मविशुद्धि को बढ़ाने का प्रयोजन रक्खो, अन्य सब प्रयोजन रद्दी हैं वे प्रयोजन बन्ध के कार्य और बन्ध के ही कारण हैं। आत्म स्वरूप रत्नत्रय से बन्ध कथमपि नहीं होता है। अमृतचन्द्राचार्य ने पुरुषार्थसिद्-ध्युपायमें लिखा है –

"येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति,
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥२१२॥
येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति,
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥२१३॥
येनांशेन चरित्रं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति,
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥२१४॥

भावार्थ – यह है कि रत्नत्रयस्वरूप धर्मसे पुण्य और पाप किसी का बन्ध नहीं होता है। बन्ध तो रागद्वेषों से होता है "मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद-कषाय-योगा बन्ध-हेतवः" "जोगा पयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो होन्ति" कषाय और योगों के साथ कर्मबन्ध हो जाने का अन्वयव्यतिरेक है। समन्तभद्राचार्य ने कहा है नाज्ञानाद्धी-तमोहतः फिर ज्ञानसे तो बन्ध क्या होगा मोहरहित अज्ञान से भी बन्ध होने का निषेध किया है। सम्यग्दर्शन चारित्र, तो कर्म बन्ध के प्रधान शत्रु हैं। सम्यग्दर्शन होने के पूर्व ही से सातिशय मिथ्यादृष्टि को अपूर्वकरण

अवस्था से ही कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा, स्थिति-काण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात, गुण संक्रमण, होने लग जाते हैं। सम्यग्दर्शन हो जाने पर तो कर्मों की तीव्र कटाकटी होने लगती है। सम्यक्त्व का अचिन्त्य माहात्म्य है, भावों को शुद्ध रखिये।.

क्षपक-श्रेणी में सम्यक् चारित्र के द्वारा बड़े वेग से कर्म बन्ध का नाश कर दिया जाता है। इस युद्ध में सम्यक् चारित्रपरिणामों से हुये कर्मों के क्षय का राजवार्तिक में बड़ा अच्छा प्रतिपादन किया है। रत्नत्रयात्मक पुरुषार्थों का जब हम विचार करते हैं तो उसके सन्मुख जीवों के सभी यत्न फीके मालूम होते हैं, एक मल्ल या जज जीवन भर में जितना शारीरिक या मानसिक पुरुषार्थ करता है उससे कई गुने पुरुषार्थ को आत्मध्यानारूढ़ मुनि एक क्षण में कर डालते हैं और उसी प्रयत्न से कर्मों का ध्वंस कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यत्न करते हुये यति को कर्म क्षय करने में भारी थकान हो जाती है अतः आचार्यों ने बीच २ में विश्राम ले लेना कह दिया है। जिन वाणी में उक्त सम्पूर्ण सिद्धान्तों का स्पष्ट निरूपण किया गया है। अब निकृष्ट कषाय और योगों का त्याग कर समीचीन धर्म पुरुषार्थ में संलग्न हो जाना तुम्हारा काम है।

एक ग्रामीण दृष्टान्त है कि एक आतुर तत्काल

विवाहित पुरुष किसी ज्योतिषी पण्डित के पास जाकर पूछने लगा कि महाराज मेरे पुत्र कब होगा ? ज्योतिषी ने पंचांग देखकर कह दिया कि तुम्हारे दो वर्ष पश्चात पुत्र जन्म होगा, बस घर आते ही वह पुत्र के लिये धन उपार्जन की आवश्यकता का अनुभव कर देशान्तर को चला गया। दो वर्ष में पुष्कल धन पैदा कर घर लौटा, स्त्री से पूछा कि लड़का कहां है ? वह बेचारी लज्जावश चुप हो गई, दौड़ा हुआ ज्योतिषी के पास गया और फटकारने लगा कि तुमने दो वर्ष पीछे लड़का होना कहा था मैं उसी दिन देशान्तर को धन कमाने चला गया था आज आया हूं किन्तु अभी तक लड़का नहीं हुआ, तुम्हारा शास्त्र झूंठा है। पण्डितजीने टका सा उतर दिया कि तुम हमारी बात पर ही रहे कि उस के लिये गांठ का कुछ पुरुषार्थ भी किया, भाई पुरुषार्थ विना दैव और दैव भी बेचारे क्या करें ? दो का योग है।

रत्नत्रय के तीनों गुण एक से हैं फिर भी इस युग के जैनों में निश्चय सम्यक्त्व और ज्ञान का इतना आदर नहीं जितना कि व्यवहार चारित्र का है बेचारे तत्व ज्ञान की तो धनके बराबर भी श्लाघा नहीं। विचारक बन्धुओ जैसे "चारित्तं खलु धम्मो" अलापते हो वैसे ही दंसणमूलो धम्मो, तम्हाणाणं हि सुद्धप्पा" ऐसे भी अनेक कुन्दकुन्द

वाक्य हैं। जैनातिरिक्त सभी सम्प्रदायों में ज्ञान का इतना निरादर नहीं 'जो जैसा करेगा वैसा भरेगा'। अब ठोस विद्वान् उपजना ही बन्द हुआ जाता है। विद्वान् गुरु के बिना कोरे स्वाध्यायकर्ता का ढोंग बना कर चालीस वर्ष तक पहली कक्षा के विद्यार्थी ही बने रहो अच्छे स्वाध्यायी तो सौ में पांच हैं। चारित्र-धारियों का भी ज्ञान-प्रचार में योग कम है। पण्डितजन अपनी ढपली बजाये जाओ जब तक निभे तभी तक सही। आजकल जैनों को जैन विद्वान् का वेतन भी खटकता है, पण्डित ने वेतन ले लिया मानो तीसरे नरक जाने का घृणित कार्य कर दिया, क्योंकि एक लाख का माल एक रुपये में बेच दिया यह अपराध किया। जबकि अन्य सम्प्रदायोंमें ज्ञानका मूल्य सौ गुना है तब जैनों में सौवें भाग है। विशेषज्ञ जैनों और अजैनों के ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों को तोलिये तब आपको सिद्धांत-मर्मज्ञ विद्वानोंकी व्युत्पत्ति का पता चलेगा। क्षत्रिय-वृत्ति के लोगों से तुलवाना, डांडी मारने वालों से नहीं। कतिपय वैश्यों को तो व्यसन व्यय, और व्यर्थ खर्च के सामने पण्डितों को रुपया देने में व्यर्थ व्यय दीख रहा है। बजट में सद भी नहीं है। यश तो गृहस्थ पण्डितों को मिलता नहीं।

देखो तीस करोड़ वैष्णवों में दो करोड़ ब्राह्मण

पण्डित हैं। दस करोड़ यवनों में चालीस लाख मौलवी हैं तभी इनमें स्वमत की अटूट श्रद्धा बनी हुई है। इन के हजारों विद्यालय, मदरसे हैं। गृहस्थ जन बड़ी भक्ति से गृहस्थ पण्डितों या मौलवियों की तन मन धन से सेवा कर स्व को कृतार्थ समझते हैं, किन्तु बीस लाख जैनों में छोटे बड़े पांच सौ पण्डित भी खटक रहे हैं। अपनी अध्यापन-आजीविका से उदास होकर वे दूसरे व्यवसायों में खसकते जा रहे हैं अतएव अपनी सन्तान को धार्मिक विद्या नहीं पढ़ा रहे हैं। अभी तो हजारों पण्डित नवीन बनें तब कहीं वैष्णव यवनों के अनुपात से जैनों में श्रद्धान, ज्ञान क्रियायें डट पावें। वस्तुतः पण्डित ही श्रद्धा (सम्यक्त्व) को स्थिर रख सकते हैं मोहक धन नहीं। तभी तो वैष्णवों में वेदों की, ईश्वर की भारी भक्ति है। यवनों में अल्लाह श्रद्धान दीन, स्वभ्रातृत्व बहुत बढ़ा हुआ है। आज कल के वातावरण को देखकर अनुमान होता है कि धुरन्धर विद्वानों के न होने से अल्पसंख्यक समाज बहु संख्यकों में गर्क हो जायंगे, कुछ हो भी चुके हैं। धिग् दुःषमा कालरात्रिम् (विद्वद्वर्य आशाधरजी)।

जैनोंमें हजारों धन-पति हैं वे एक दो विद्वानों को अवश्य रखें जैसे कि सर सेठ हुकुमचन्द्र जी, सर सेठ भागचन्द्र जी ला० प्रद्युम्नकुमार जी कई विद्वानोंको रखते हैं। जैनों में अभी

हजारों पाठशालायें खुलने की आवश्यकता है तभी रत्नत्रय धर्म व्यापक हो सकेगा।

अच्छे जैन विद्वानों के रखने से ही धनिकों या स्थानीय पंचायत का धर्मपालन अक्षुण्ण बना रहेगा तभी सन्तान प्रतिसन्तान तक यह लक्ष्मी परम्परा अनुस्यूत रही आवेगी

'पुण्यानुसारिणी लक्ष्मीः, कीर्ति दानानुसारिणी।
अभ्यासानुसारिणी विद्या, बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥

इस नियम को पक्का समझो। धर्म विना ये भोग या लक्ष्मी चिरकाल तक नहीं टिक पावेंगे। इसके उदाहरणों की प्रति दिन भरमार दीख रही है।

यह श्रद्धा ज्ञान चारित्र की न्यूनता जो हो रही है उस का उत्तर-दायित्व जैनों पर ही है। जो स्व का आदर नहीं करता है वही निज-वर्ग का घातक है। जैनों में कलाओं का कुछ आदर है, पाण्डित्य का नहीं। जितना बड़ा विद्वान् होगा उतना ही अधिक उसका निरादर होगा, अधिक मजूरी भी करनी पड़ेगी तब सामान्य स्थिति का गृह-निर्वाह होसकेगा। सागारका "न्यायोपात्तधनः" प्रथम गुण है अर्थ पुरुषार्थ है, जो कमाते नहीं वे पौरुषहीन हैं अन्याय से उपार्जन भी निषिद्ध है।

अधिगत-परमार्थान् पंडितान् मावमंस्थाः,
तृणमिव लघु लक्ष्मी, नैव तान् संरुणद्धि।

मधुकर- मदलेखाम्लान, - गण्डस्थलानाम्,
न भवति विसतंतु-र्भग्णं वारणानाम् ॥

भर्तृहरि-जो कि पीछे से अपने बड़े भाई श्री शुभ-चन्द्राचार्य के उपदेश से पारद सिद्धि को लात मार कर दिगम्बर मुनि होगये थे। "नमोस्तु रत्नत्रयाढ्यसद्गुरुभ्यः।

कुछ कलिकालका भी दोष है कालकी सिद्धांतव्याख्या यह है कि "दव्वपरिवट्ट रूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो" शीत, उष्ण वर्षा आदि ऋतु-परिवर्तन, नियत कालों में न्यारी २ आम, अमरूद, खट्टा, इमली, आंवला लुकाट, आलूबुखारे, वेला चम्पा, रात की रानी आदि वनस्पति-यों का फलना फूलना, नियत काल में कुत्तों गधों को यौवनोन्माद आना। गेहूं, चना, मूंग आदि धान्य का नियत समयों पर ही उपजना यह सब कुछ व्यवहारकालों के कार्य हैं। काल द्वारा जीव पुद्गल यानी संसारी आत्मा वायु भूमि, जल आदि में अनेक विभाव परिणाम होते रहते हैं। कारणों के पेट में चीर कर सद् भूत शक्तियां घुस दी जाती हैं तब वे कार्यों को उत्पन्न करते हैं। बिना डांटे कौन कार्य करे। जीव पुद्गल द्रव्यों का विभिन्न परिवर्तन ही तो व्यवहार-काल है। ऐसा श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने कहा है। मुख्य काल के वर्तना कार्य द्वारा यह कारण द्रव्यपरिवर्तन-स्वरूप व्यवहार काल विशिष्ट

कार्यों को करता रहता है। बहुत से कार्य तो आप के ज्ञान गम्य भी नहीं हैं। यों इस निकृष्ट काल में शिष्ट मानव क्लेशापन्न हैं। सज्जनों का अन्यद्वारा दुःखापहरण न्यून हो चला है।

भ्रातृवर! लगे हाथ इस बातका भी निर्णय कर लो कि जैन सिद्धांतों में कोई अतिशय ठोस कार्य कारण भाव से खाली नहीं है। मछली या वृक्ष से मनुष्य उत्पन्न होजाना ऐसे पोले कार्यकारण-भावहीन चमत्कारों को स्वीकार नहीं किया जाता है। बीज बिना अंकुर नहीं उपजता है चाहे स्वर्ग हो या नरक हो, भोग भूमि हो, मोक्ष स्थान भी हो या प्रलय हो चुका हो निमित्त नैमित्तिक भाव का भंग नहीं होना चाहिये प्रलय काल में अनेक बीज या मनुष्य स्त्री, घोड़ा घोड़ी, चूहा चूही, कबूतर कबूतरी, नौला नौली आदि जीव देशांतर में चले जाते हैं पुनः आ जाते हैं। देव विद्याधरभी इनको ले जाते हैं गर्भज घोड़ा हाथी गाय, भैंस, लड़का लड़की कभी माता पिता के संयोग बिना नहीं जन्म ले पाते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् के गर्भ, जन्मों में करोड़ों रत्नों की वर्षा होती है। लम्बी चौड़ी नगरी बनाई जाती है। स्वर्ग से भोज्य सामग्री, वस्त्र, भूषण आते हैं। केवल ज्ञान होजाने पर समवसरण बनाया जाता है। उस में कोट, खाई, जलभरी बावड़ियां, ध्वजायें, उपवन, रत्न-

स्तूप आदि की रचनायें की जाती हैं ये कोई कल्पित नहीं हैं। पुद्गलों करके स्वर्ग के स्थपतियों द्वारा बनाई गई वस्तुभूत हैं। कतिपय श्रोता इन विभूतियों को इन्द्रजाल, मायामय, दृष्टि बन्ध खेल सदृश मान बैठते हैं। सो ठीक नहीं है। जिस कार्य को मनुष्य हाथों से महीनों, वर्षों में करता है उस कार्य को वैज्ञानिकजन वाष्पयंत्र, बिजली की सहायता से घंटों में कर लेता है ततोऽप्यधिक शक्तिशाली आभियोग्य देव उसी कार्य को मिनटों, सैकिण्डों में कर डालते है, अर्थात् नगरी या समवसरण में पाये जारहे सोने, स्फटिक, चांदी के कोट या खाइयां, प्रासाद, ध्वजायें, मानस्तम्भों आदि को कारीगरों ने बनाया है उनमें लगाये गये ईंट, चूना, सीड़ियां, कुलावे, कीलें, छतें, दरवाजे, सहल आदि सच्चे ठोस धातु या रत्नमय हैं। स्वर्गों में देव इन्द्रों द्वारा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा की जा चुकीं कृत्रिम प्रतिमायें स्वर्गों से लाई जाती हैं। समवसरण विघट जाने पर प्रतिमा जी और सामान सविनय वहां ही पहुंचा दिया जाता है फिर भी काम में आ जाता है। लवण समुद्र के पृथ्वी से हज़ारों योजन ऊंचे उठे पानी को लाखों वेलन्धर देव प्रतिक्षण निरालस्य डाटे हुये हैं बहुत उपयोग लगाकर परिश्रम से यह जल थामने का कार्य किया जा रहा है। कचित् स्वल्प भी प्रमाद हो जाने पर जम्बूद्वीप का पता

भी न पायगा। ये कार्य ठोस हैं नकली (दिखाऊ) नहीं।

अमेरिका का ६४ मंजिल का प्रासाद, कलकत्ता में हुगली नदी पर बीच में खम्भा दिये बिना ६०० सौ गज लम्बा बना पुल, या आबू के मन्दिर ये सब कारीगरों ने ही बनाये हैं किसी वाजीगर ने नहीं दिखा दिये हैं। एक महीने में बनने योग्य पुल दिल्ली दरबार का उत्सव निकालने के लिये अत्यावश्यक हो रहा लाहौर के इंजीनियर ने एक दिन में बनवा दिया था। कृतज्ञ, प्रसन्न वाईसराय लार्ड हार्डिञ्ज ने उस कारीगर को बहुत बड़ी सर उपाधि दी थी। गुणों और कलाओं का आदर न करने से न जाने कितने कलायें भारत से नष्ट हो चुकी हैं। बस अब अनुताप करते रहो। अच्छा सुनो स्वर्गों में नदी, पर्वत सरोवर, बन उपवन, अकृष्ट-पच्य धान्य, फल फूल, वृक्ष, वनस्पतिघृत, वृक्ष-दुग्ध वास्तविक होते हैं। स्वर्गोंमें गाय, भैंस, बकरी विकलत्रय जीव नहीं हैं। यहां भी पर्वतों, जंगलों में लाखों वनस्पतियां, औषधियां बिना खेत जोते बोये, अपने नियत बीजों से उपजती विनशती रहती हैं। भले ही उनका उपयोग नहीं होवे। कमठचर देव ने भगवान् पार्श्वनाथके ऊपर पुद्गलोंसे बने हुये मेह, बिजली, घनघोर शब्द आदि वस्तु-भूत पदार्थों से उपसर्ग किया था हां कचित् मनुष्य-मुंड-माला, मुख से धांय २ अग्नि निकालना ये विक्रिया थी

हाथी बन जाना भी विक्रिया है, रेवती की परीक्षा के लिये नकली समवसरण दिखाया था। एक स्थल पर कल्पित रचना को देखकर सर्वत्र इन्द्रजाल की कल्पना नहीं कर बैठना।

एक देव ने मुनि को आहार देने के लिये कल्पित नगर बसा दिया था। दो पोंगा देवों ने भ्रातृ-प्रेम की परीक्षा करने के लिये अयोध्या में रानी का विलाप, रामचंद्र की मुर्दा अवस्था, आदि दिखाकर लक्ष्मण के सन्मुख मुख्य अमात्य रूप से 'रामो मृतः' कह दिया उसी समय सुमित्रानन्दन का हृद्‌गतिरोध (हार्टफेल) हो गया था। प्रद्युम्न जी ने भी कुछ मायामय कौतुक दिखा दिये थे। इनमें मायावित्व है अन्यत्र नहीं। देव लोग तो समवसरण की भींतों को वेदियोंको शीघ्र बना देते हैं तत्काल सीमेंट को सुखा देते हैं। जो ईंट पर लिपटा गीला चूना महीनों में सूखता है जलभरी नदीमें पुल खम्भा बनाते समय पांच मिनटमें सुखा दिया जाता है। चक्रवर्ती के शिल्पी के कार्यों का स्मरण कर लीजियेगा। समवसरण को पौद्‌गलिक वस्तुभूत समझो। साथ ही यह भी कि इन्द्र या देवता परमार्थ सद्भूत आटे, दूध, घृत से बने रसीले पकवान, व्यंजनों से जिनेन्द्र पूजा करते हैं। नकली दिखाऊ नैवेद्य से नहीं। कोई हास्य नहीं किया जा रहा है इन्द्रध्वज पूजन को पढ़ो

पूड़ी, लाडू पकवान ये सब गेहूं, बेसन, घी, खांड, दूध, मूंग, मेवाओं से ही बनते हैं और ये पदार्थ सब बीज या पर्व से उपजीं वनस्पतियों से प्राप्त हो जाते हैं। कोई खिलवाड़ नहीं, विक्रिया भी नहीं। चने, गेहूं, बादाम, पिस्ता, मूंग, गन्ना ये इनके वृक्षों से ही प्राप्त किये जाते हैं। स्वर्गोंमें आम अमरूद गेहूं आदि सभी पेड़ हैं भोजनाङ्ग कल्पवृक्ष बढ़िया फल मेवा दे देते हैं और क्या लोगे भोजनाङ्ग कल्पवृक्ष भोजन नहीं दे सकता है। जैसे कोई भी कल्प-वृक्ष (एकेन्द्रिय) विचारा घोड़ा, भैंसा, सिंह, स्त्रियां नहीं दे सकता है ये मिथुन-जन्य जरायुज ही हैं तद्वत् बीजरुह या पर्वरुह गेहूं, रमास उर्द मूंग, गन्ना, आदि को भी नहीं दे पाता है। ये अपने २ नियत वनस्पति वृक्षों से प्राप्त कर लिये जाते हैं। न्याय शास्त्र के कार्य कारण भाव को मत तोड़ो। कोई अहमिन्द्र भी नहीं तोड़ सकता है। औदारिक शरीरी त्रसों से ही मांस उपजता है, धूआं आग से बनता है। माणिक, मूंगा, पन्ना स्फटिक, नीलम, वैडूर्य, हीरा, सोना, चांदी, लोहा तांबा पत्थर अथवा आम अमरूद गेहूं केला काठ को पृथ्वी-कायिक या वनस्पति कायिक एकेन्द्रिय जीव बनाते हैं। जौहरी सुनार बढ़ई किसान नहीं बना पाता है अयस्कार सुवर्णकार नाम धरने में क्या रखा

मोती को सीप का द्वीन्द्रियजीव, बना लेता है। बांस,

गज, शूकर मछली सेभी मोती उपजे सुने जाते हैं। इनको इन्द्र अहमिंद्र नहीं बना सकता है। नकलीको कौन पूछे। ईश्वर-बाद को मत फैलाओ।

प्रिय विचार शील ! दूध वाले वृक्ष भी होते हैं। कोई देव जंगली गाय भैंसों से भी दूध प्राप्त कर लेता होगा। कोई अशक्य नहीं शांतिसे अवगम करो, नियत बीज योनि कुलों को न भूलो।

हजार योजन मोटी चित्रा पृथिवी से नीचे और निन्यानवै हजार चालीस योजन ऊंचे उठे सुदर्शन मेरु से ऊपर मानव शरीर या गाय भैंस घोड़े नहीं जा सकते हैं। किन्तु स्वर्गों में या भवनवासियों के यहां दूध मोती रत्न गेहूं तो यहां से ले जाये जा सकते हैं। 'असम्भवद्वाधकत्वात् सत्वसिद्धिः' बाधक प्रमाण न होनेसे पदार्थका सद्भाव सिद्ध हो जाता है। यों यथार्थ सद्भूत हो रहे समवसरण जिन-नगरी जिनेन्द्र पूजा द्रव्य को अपने निश्चय में रखो।

कल्प वृक्ष भी परिमित नियतचीजोंको ही देसकते हैं। तभी तो महापुराण में लिखा है कि कालक्रम से कुलकरों-के समय कल्प वृक्षों की शक्ति मन्द पड़ गई थी। ला०-प्रद्युम्नकुमार जी के बाग में २५ वर्ष में हमारे देखते अनेक आम्र-वृक्ष फल फूल कम देने लगे हैं। किसी पेड़ पर तो मात्र चार छः ही आम लगते हैं। इसी कारण अनेक वृक्ष

काट दिये जाते हैं।

गुरुवर्य न्यायवाचस्पति स्याद्वादवारिधि महाविद्वान् पं० गोपालदास जी बरैया कहा करते थे कि पहिले कल्प-वृक्ष ये ही वनस्पति-कायिक आम अमरूद केला सेव नाख नासपाती अनार के ही वृक्ष थे जो कि अनादि अनंत बीजांकुर परम्परा से जनित जन्यमान जनिष्यमाण हैं। ये ही भोग-भूमि काल में योग्य खाद्य दीपक वस्त्र बाजे घर वर्तन भूषण दे दिया करते थे सो ठीक जंचता है। मेरे गुरु पं० गोपालदास जी थे इनके गुरु पं० बलदेवदास जी आगरा थे इनके भी गुरु छत्रपति थे आगे की गुरुपरम्परा ज्ञात नहीं हो सकी अस्तु उद्भट पण्डित भी आदेश देसकते हैं। इन कल्प वृक्षों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय कालों में षट्-कुलाचल के कमलों या जम्बूवृक्ष के समान पृथ्वीकायिक मान लेना पुनः चिरस्थायी रत्नमय न मानकर काल दोष से इनका क्षय स्वीकार करना असह्य क्लिष्ट कल्पना है। हां देवों के यहां अधिक से अधिक दस हज़ार वर्ष की उम्र वाले वनस्पति-कायिक तथा चिरकाल-स्थायी पृथ्वी कायिक दोनों जाति के कल्पवृक्ष हैं। (सुरपुष्प-वृष्टिः) "मन्दारकुन्दकमलादिवनस्पतीनां पुष्पैर्यजे"।

जगत् के सभी पदार्थों में परिमित शक्तियां हैं। अम-र्यादित नहीं। चक्रवर्ती सब याचकों को किमिच्छक दान

देकर कल्पद्रुम पूजन करता है इस पूजा में आज कल की प कल्याणक प्रतिष्ठा से भी सैकड़ों गुणा विधि मंत्र विधान किया जाता है। यहां वान्छकों को योग्य देय पदार्थ ही बांटे जाते हैं चक्री अपनी स्त्रियां, साम्राज्य, चौदह रत्न, नौ निधियां नहीं दे डालता है सम्राट् इन वस्तुओं को दे भी नहीं सकता है।

विज्ञवर ! इसी प्रकार कल्पवृक्ष भी कार्य कारण भाव का अतिक्रम नहीं कर स्वयोग्य परिमित वस्तुएं देते हैं।

भोजन भाजनाङ्ग वादित्र गृह दीप भूषण वस्त्र वाहन अङ्ग आदि दस प्रकार के कल्पवृक्ष माने गये हैं। ये बने बनाये खीर कलाकंद पिस्ता की लौज मोतीपाक इमरती, मसालेदार तरकारी चांट बिस्कुट आदि, टिपनदान चाय-सेट करंडी कलईदार कटोरदान चमचा मुरादाबादी गिलास कटोरा आदि, ग्रामोफोन रेडियो प्यानो हारमोनियम सारङ्गी वेला सितार आदि, ताजमहल होटल चीन की दीवाल बिडला मन्दिर आबू के जैन मन्दिर अजमेर के सोनी जी की नसियां कुतुब मीनार आगरा फोर्ट चित्तौरगढ़ आदि, सर्चलाइट फ्लडलाइट गैस हन्डा लालटेन फानूस आदि, हुस्सी, नैकलैस, आर्मलेट, मोहनमाला, वैष्ट ऐण्ड वाच, दस्तवन्द छंद, गजरे, जंजीर, पाजेब, अनोखे आदि, कोट, पारसी कालर, सूटर, अचकन, फैल्ट कैप, कमीज, वास्कट,

अंगरखा, ग्वालियरी पगड़ी, जोधपुरी साफा, गांधो टोपी, जरी का दामन, साड़ी, सिलवार, फिराक आदि, रथ चौकड़ी, मोटरकार, पेट्रोलवायुयान, साईकिल आदि तथा आचार्य परीक्षोत्तीर्णता, डीलिट् की पदवी सर राय बहादुर की उपाधियां, पूरे जम्बूद्वीपका साम्राज्य अपनी स्वर्ग प्राप्ति, शत्रु को नरक भेज देना, लड़की का लड़का बना देना प्रभृति कर्तृदैव जन्य कार्यों को वे कल्प वृक्ष नहीं दे सकते हैं। आप इन वस्तुओं को लेने की आपक न करें। आपकी अपेक्षा व्यर्थ जायगी। हां वृक्षोचित, खाद्य, मादक पेय, भाजन, वसन, घर, भूषण आदि को प्राप्त कर सकते हैं। परोक्ष पदार्थों का विशेष अध्ययन प्रत्यक्षज्ञानियों से करें। मैं तो आगमदृष्ट या गुरु-परम्परा-श्रुत विषय को ही कह सकता हूं। विशेष ज्ञानी अधिक प्रकाश डालें मुझे कोई हठ नहीं है। आगम और सद्युक्ति का लक्ष्य रखियेगा। कुतर्क, कुचोद्य, उपहास करना पाण्डित्यसे बहिर्भूत किया है। श्री प्रभाचन्द्र आचार्य ने तो प्रमेयकमलमार्तण्ड की आदि में लिखा है कि—

त्यजति न विदधानः कार्यमुद्विज्य धीमान्,
खलजनपरिवृत्तेः स्पर्द्धते किन्तु तेन।

खलजनों के वर्त्ताव से उद्वेग को प्राप्त होकर बुद्धिमान् पुरुष कार्य को छोड़ नहीं देता है किंतु कार्य करने की

अधिक स्पर्धा करता है।

श्री आदीश्वर महाराज के दीक्षा ले चुकने पर राज्य मांगने के लिये आये इनके साले नमि, विनमि को धरणेन्द्र ने विजयार्द्ध का राज्य दे दिया था यानी रजताद्रि के तत्कालीन छोटे २ राजाओं को धरणेन्द्रने स्वशक्ति से दबा दिया, समझा दिया, किसी गर्वित को दण्डित भी कर दिया। जैसे कि चमरेन्द्र अनेक उद्दण्ड कल्कियों को वज्र आयुध से मार डालता है। यों सब राजाओं के ऊपर नमि-विनमि को दोनों श्रेणियों का महाराजा बना दिया। क्या हुआ? आज भी छोटा राज्य देने में ऐसा किया जा सकता है, किसी २ महाराजा ने किया भी है। जयपुर के महाराज माधवसिंह जी की जीवनी पढ़ो। अन्य धरणेन्द्रने जिन-भक्ति पर प्रसन्न हो कर रावण को अमोघ शक्ति बाण (खञ्जर) दे दिया। अर्थात् अनेक देवियां उसके वश में थीं। शक्ति की अधिष्ठात्री देवी को रावणके प्रहार कार्यार्थ नियुक्त कर दिया। ये सब धरणेन्द्रकी शक्ति के भीतरके कार्य हैं। नाग लोक का राज्य तो किसी को भी नहीं दे दिया था। किसी को सौधर्म इन्द्र तो नहीं बना दिया नमि विनमि को अपने भवनों में ही ले जाता। आस्ताम्।

बन्धुओ—यह ख्याल रखना कि देव या इन्द्र सम्यग्दृष्टि इन सिंघई, सवाई सिंघई, श्रीमन्तोंसे बढ़ कर रत्नमय

बिम्बों को स्वर्गीय कारीगरों से बनवा कर परमार्थ सत् द्रव्यों से जिनेन्द्र की पंच-कल्याणक प्रतिष्ठायें करते हैं। सामान्य पूजन भी करते हैं। सभी देव उच्चगोत्री होते हैं। आप लोगों से देव सम्पन्न, सग्ज्ञ, ज्ञानी, शुद्ध हैं। सौ-धर्म तो द्वादशांगवेत्ता है इन्द्र के परिवार के महर्द्धिक देवोंमें बृहस्पति (ज्योतिषी बृहस्पति न्यारा है) पुरोहित, गुरु, उपाध्याय सदृश देव भी गिनाये हैं। ये बड़े प्रतिष्ठा-काण्ड के ज्ञाता हैं। मन्त्रविधि क्रिया करानेमें अतीव निपुण हैं। तभी तो आप प्रति दिन पूजा के अन्त में कहते हैं कि-

"शास्त्रोक्तविधि पूजा महोत्सव सुरपती चक्री करैं,
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे यथाविधि पूजा करैं"।

देवों करके इन्द्रध्वज पूजनं भी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्वक ही सम्पन्न की जाती है। अन्यत्र भी सौवें पांच सौवें लाखवें, (लवण समुद्र के भीतर भी) चाहे जहां द्वीपों या समुद्रों में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह रचा जाता है।

आप भी तो पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करते समय किसी प्रतिष्ठाचार्य विद्वान् या प्रतिष्ठा कराने वाले धनी में इन्द्र की स्थापना (इन्द्र प्रतिष्ठा) कर लेते हो। अन्यों को कुबेर या लौकान्तिक बना लेते हो। कन्याओं को श्री धृति-आदि छप्पन कुमारी थापते हो। स्वर्गों या भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषियों के यहां तो सब सामान यथार्थ (असली)

विद्यमान रहता है। सुमेरु पर्वत पर भगवान् का स्नपन देव ही कर सकते हैं। इन्द्रध्वज विम्बप्रतिष्ठा में सुमेरु गिरि पर चाहे जहां या सोलह चैत्यालयों में अथवा स्वर्ग में ही पाण्डुक शिला स्थाप कर जन्माभिषेक कर लेते हैं। फिर इन्द्र प्रतीन्द्र सामानिक द्वारा नवीन प्रतिमा बनाने में ही क्या आपत्ति आगई! वे प्रतिष्ठा के पीछे आगतभाइयों को लड्डू नहीं बांटते हैं। हां धार्म्मिक देवों का खूब स्वागत, सन्मान सत्कार करते हैं विशिष्ट चर्चायें करते हैं। अपार आनन्द मानते हैं। प्रतिष्ठित प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं किन्तु खान पर जाकर विधि विधान कर वहां से रत्न-पाषाण लाते हैं। स्वर्ग में असंख्यात योजनों लम्बे चौड़े लाखों विमान हैं। अनेक पहाड़ और खानें हैं। पश्चात पाषाणों में मनोज्ञ प्रतिमा जी को छैनी से उकेरते हैं, तब मन्त्र प्रयोग क्रिया विधान शास्त्रोक्त करते हैं। ये सब क्रियायें परमार्थ सत् हैं।

अब आप कहो कि तुम असत्त कार्य करते हो कि इन्द्र? आज भी बीसपन्थ सम्प्रदाय के जिन मन्दिरोंमें भव-नवासी, व्यन्तर देव देवियों की मूर्तियें स्थापित हैं। ये सब जिनशासन रक्षक देव माने गये हैं। यहां जम्बूद्वीप से असंख्याते द्वीप समुद्रों तक तिरछे चलकर परली ओर के द्वीप समुद्रों के नीचे वज्रा आदि पृथ्वियों में भवन वासि-

यों के भवन हैं। प्रत्येक भवन के मध्यवर्ती छोटे से पर्वत पर अकृत्रिम जिन मन्दिर शोभता है। ढाई द्वीप या इनसे चिपटे सैकड़ों हजारों द्वीपों के नीचे कोई भी जिन मन्दिर नहीं हैं जिनकी कि उपरिम आप लोगों से अविनय हो सके। हां नरकों के उनचास इन्द्रक बिले जम्बू द्वीप के ठीक नीचे अवश्य हैं। यों श्रावक अपने आद्य आवश्यक कर्त-व्य जिन-पूजन को करें, कराये जाओ। वस्तुतः आप लोग नकल करते हैं और इन्द्र या देवता ही मुख्य असली कार्य करते हैं। इन्द्र या महर्द्धिक देव जो इन्द्रध्वज पूजन, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, नन्दीश्वर द्वीप में अष्टान्हिका पूजन आदि धार्मिक कृत्य करते हैं वे कोई दिखाऊ, इन्द्र-जाल, कल्पित दृष्टिबन्ध, मायाजाल, छूमन्तर नहीं हैं, किंतु परमार्थ सत् हो रहे सुकृत कृत्य हैं।

इन्द्र के समान हम आप क्या पूजन कर सकते हैं? बस मौन रखिये। देवों को जिन-पूजन का तीव्र अनुराग (शौक) है। लघु रत्नत्रय-मय जिन-पूजन को छोटा धर्म न समझना। मात्र मानव शरीर से दीक्षा, मोक्ष, जिनजन्म, मुनिदान हो जाने की शेखी पर ही मत कुप्पा हो जाओ। अन्य भी धार्मिक कृत्य अनेक हैं। नगर के महाधनी सेठ और उसके कर्जदार उसी नगर के हिज हाइनेस की शक्ति को परखो। मदीय स्नेही बन्धुओ! सौधर्म इन्द्र बड़ी भक्ति-

चाव से जिनार्चा करता है। कभी २ तो मुझे भी वैसा पंच कल्याणक करने का निदान सा हो जाता है निदान में भोगा कांक्षा रहती है यहां भोगेच्छा नहीं "दुःखक्खउ कम्मक्खउ, समाहिमरणं च बोहिलाहो य" के समान सज्जातिः, सद्गृहस्थत्वं, पारिव्राज्यं, सुरेन्द्रता, तीर्थङ्करत्व, इन परमस्थानों की भावना करना गृहस्थ का अनुचित निदान नहीं है। शुभ कामना की साधना है।

प्रतिष्ठा-विधि में पूजन के लिये सम्यग्दृष्टि देवों को अनुक्षण आवश्यक हो रहे नैवेद्य का बनाना भी कोई कठिन नहीं है। कच्चा सामान विद्यमान है। विकलत्रयों की उत्पत्ति का भय नहीं। बढ़िया पक्वान्न बना लिये जाते हैं। यहां भी तो अयोध्या में भगवान् की माता की सेवा श्री आदि देवियां करती हैं ये भोजन, पेय, वसन, दर्पण, वीजना आदि सभी का प्रबन्ध करती हैं। तीर्थङ्कर की माता के आहार है निहार नहीं।

कच्ची सामग्री नगरी में है स्वर्ग से भी असली आती रहती है। कुशल देवियां झट बना लेती हैं। अन्य रसोइया, भृत्य भी अनेक हैं। इन्हीं दक्ष देवियों की उपमा आप के घरों में भी किसी चतुर गृहस्थ वधू को दे दी जाती है। अत एव पट्टरानी को मुख्यतया देवी कहते हैं।

(सम्मति सत्य)

जलकलश के दिन भी आप इन्द्र बनाकर गाजे बाजे के साथ उछाह निकालते हैं अथवा प्रति दिन अभिषेक पूजन करते समय मुकुट लगाकर स्थापना इन्द्र बनजाते हो।

पहिले बाहुबली स्वामी की प्रतिमा सवा पांच सौ धनुष ऊंची बनी थी। उस प्रतिमा की नकल जैन-बद्री में व्यालीस हाथ ऊंची बनाकर की गई। पुनः इन प्रतिमा जी की भी प्रतिमायें बनाकर आरा आदि में सहर्ष पूजी जा रही हैं, यहां सहारनपुर में भी हैं। यह स्थापित की स्थापना पर पुनः स्थापना चल रही है। नमन पूजन, अभिषेक, उछाह नृत्य आदि में हम देवों की ही नकल कर रहे हैं। नकल की चकाचौंध में असल को भूल जाते हो। सुवर्ण, मोती, सिलवर, घृत, आटा, सफेद मिर्च, साबूदाना, घड़ियों नैवेद्य दीप, पुष्प, वंशलोचन, केसर, कस्तूरी, शिलाजतु शिष्टाचार आदि में सर्वत्र नकल ने असल को छिपा दिया है। कोई २ व्यापारी तो नकल को पकड़कर असल की निन्दा करने लगे हैं। धन्य हो महाशय जी!

मित्रवर्य! अभ्यन्तर की आंखें खोलकर पर्यवेक्षण कीजिये तब वस्तुतत्व प्राप्त हो जायगा। भक्त पुरुषो आज कल अहिंसा, सत्य, स्वाध्याय, ध्यान, नियम, आखड़ी, सामायिक, आकिञ्चन्य, भोगोपभोगपरिमाण विनय वैयावृत्य, व्युत्सर्ग, परीषहजय, ब्रह्मचर्य, देशव्रत, अनशन

विविक्त शय्यासन आदि सभी गृहस्थ धर्मों का निचोड़ निर्मलभाव भक्ति पूर्वक किया गया जिन पूजन है।

"सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि,
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी"।
(गोम्मटसार)

आगम से पुष्ट कर देने पर भी जो हठवश श्रद्धा नहीं करता है वह मिथ्या-दृष्टि है। अतः पूजन स्वाध्याय करते या ध्यान करते समय इन उपर्युक्त वस्तुओं को अन्यूनानतिरिक्त यथार्थ विचारो। और अधिक क्या कहूं ?

देव सुमेरु से ११२१ योजन दूर अस्थिर स्थिर ज्योतिश्चक्र से बचकर सामान ले आते जाते हैं ताराओं के तिरछे अन्तराल स्थान एक बटे सात कोस से लेकर हज़ार बड़े योजन तक के हैं। इनमें से आदीश्वर भगवान् के समवसरण के लिये आवश्यक होरही अड़तालीस छोटे कोस लम्बी चौड़ी गोल चपटी नीलमणिकी शिला डेढ़ राजू ऊपरसे सुलभता से आ जा सकती है। महावीर स्वामी की सभा के लिये केवल चार कोसकी शिला आवश्यक है जिस पर पूरा समवसरण देव स्थपतियों करके बनाया जाता है। विद्याधर या नारद अथवा ऋद्धि धारी मुनि भी पर्वतों, लवण जलधि जलों और ज्योतिर्विमानों से बचकर ढाई द्वीप के क्षेत्रान्तरों को आते जाते हैं।

वैक्रियिक शरीर वाले देव स्वशरीर या अन्य भूषण, वस्त्र, खाद्य, रत्न वृष्टि, पुष्प वृष्टि, पूजन योग्य पदार्थ, बाजों आदि को ज्योतिष्क विमानों में घुसकर भीतर से भी अक्षुण्ण ले आसकते हैं। धरणेन्द्र, चमरेन्द्र, असुर आदि देवता यहां हज़ारों योजन मोटी, चित्रा, वज्रा आदि ठोस पृथ्वियों के भीतर होकर सामान सहित आते जाते हैं। जैसे कि स्थूल बिजली का करेन्ट नमी, उष्णता, शीतत्व बीस मकानों या लोह मय तिजोरियों के भीतर भी घुस जाते हैं। जन्म कल्याणक में एक लाख योजन का हाथी इन्द्र विमान, नृत्यकार, वादित्र आदि परिकर सभी ज्योतिष चक्र के भीतर से भी निरापद आते जाते हैं। दोनों को कोई कष्ट नहीं। जब सूक्ष्म औदारिक ही न रुकता है, न रोकता है तो वैक्रियिक शरीर-धारी देवों के सामान को कौन रोक सकता है। अवगाहनशक्तिका गम्भीर अध्ययन कीजिये। नरलोक और मानवों की सत्ताईस या उनतीस अंकप्रमाण संख्या का भी दृष्टि-कोण में रखना क्या बात है? तीन लोक में बादर अनन्तानन्त पुद्गलों की निर्द्वन्द्व स्थिति निर्वाध हो रही है।

हां इन्द्र देव हाथी पर गोद में बैठे बाल भगवान् की इन आकारकों से बाल २ बचाये रखते हैं। अधिक तर्क करने की टेव अच्छी नहीं, आगम-प्रमाण भी कोई सार

वस्तु है।

जर्मनी, रूस, अमेरिका के भीषण युद्ध या पश्चिमी पंजाब की अनीतिपूर्ण पाप क्रियाओं को क्या सभी ने आंखों से देखा है? अपने सभी अङ्गों उपाङ्गों भीतरी अवयवों या बड़ी हवेली स्वनगर को ही पूर्णरीत्या जब नहीं देख सके हो तो आर्यखण्ड, भरत क्षेत्र अथवा लकड़ी के तख्ते सदृश रत्न प्रभा या तीनों लोकों की बातों की इन हीन शक्ति परोक्ष इन्द्रियों से जानने के लिये क्यों झगड़ रहे हो।

यदि किसी अन्य की देखी और दूसरों की सुनी हुई बातों को प्रमाण मानते हो तो सर्वज्ञ-दृष्ट, गणधराचार्य-परम्परा-प्राप्त तत्वों को भी सविनय स्वीकार कर लीजियेगा। सत्यार्थ वक्ता तीर्थङ्कर-भाषित आगम पर श्रद्धान कीजिये उत्तरदायित्व आचार्यों पर धर दीजिये। अपने साक्षात् आवश्यक परिमित तत्वार्थों का श्रद्धान कर थोड़ा सम्यग्ज्ञान बढ़ाते हुये आत्म-स्थिति द्वारा निःश्रेयस प्राप्त कर लो "कुतः श्रेयोतिचर्चिनाम्"।

अपनी इन्द्रियों या मन से तो अनन्तवें भाग पदार्थों को भी नहीं जान सकते हो। मैं स्वयं अनेक गूढ़ प्रमेयों को पूर्वोत्तरपक्ष या युक्ति उदाहरणों द्वारा समझाने में अशक्य हूं। हां इन्द्र, लौकान्तिक, अहमिन्द्र अवस्थाओं

में बहुश्रुतज्ञान प्राप्त कर आप सूक्ष्म तत्वज्ञप्ति से परितृप्त हो जायेंगे। वहां के प्राप्य कार्यों के लिये अभी से क्यों अकुला रहे हो। संतोष धैर्य से काम लो। मोक्ष के लिये सभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों का विवेचन आवश्यक नहीं है। त्वं सः मा सः को तुष मास भिन्न या "कंडसि पुणुणं खेवसि यों अशुद्ध बोलने वाले अत्यल्प ज्ञानी भी भाव-लिङ्गी महाव्रती ऋद्धिधारी बन गये हैं। मिथ्यात्व रहित कषाय मंद होने चाहिये। "णमो अरहंताणं" मात्र इतना रट रहा सुभग-नामक ग्वाला मरकर सुदर्शन सेठ होकर पटना से मोक्ष गया, रुद्र ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़ गया तो क्या हुआ? "ज्ञानस्तोकाद्धि मोक्षः स्यात्" मोह रहित स्वल्प ज्ञानसे ही मोक्ष हो जावेगी, ऐसा समंतभद्र आचार्य विधान करते हैं।

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्वं हेतुभि-र्नैव हन्यते,
आज्ञा सिद्धन्तु तज्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः।

यदि चाकू चुगने वाला छोकड़ा माता द्वारा प्रोत्साहन पाकर कालान्तर में पक्का डाकू बन जाता है। तो निज स्वभाव ज्ञान पर निसर्गाधिकार (मौरूसी हक) रखने वाला पहिले स्वल्पज्ञानी भी पुरुषार्थ द्वारा पीछे द्वादशांगवेत्ता होकर कैवल्य प्राप्त कर ही लेगा। विकासके क्रम नियत हैं।

ध्यान और ध्यातव्य

आजकल ध्यान करना सर्वोत्तम धर्मपालन है। आर्त

रौद्र तो तिर्यञ्च नरक गतिके कारण हैं। इस युगमें शुक्ल ध्यान हो नहीं सकता है हां धर्म्यध्यान विषय ही एक देश ध्याया जा सकता है। ध्यान के लिये ऐसा एकान्त स्थान उपयोगी है जहां पशु पक्षी स्त्री बालक खिलाड़ी भूषण खाद्यसामग्री नृत्य गीत वादित्र झगड़े कलह हिंसा व्यभिचार मद्यसेवन द्यूत पाप-कथा आरम्भ परोपरोध गाली सिंह सर्प आगन्तुक कीट आदि का प्रसंग नहीं होय। अधिक गर्मी अतिशीत भी नहीं होय तीक्ष्ण वायु आतप वर्षा के उपद्रव से रहित होय। तथा शरीरको बाधा नहीं करने वाले शुद्ध-स्थल पर सुख-पूर्वक मौन बैठकर या खड्गासन ध्यान लगावे। थोड़ा मुख नमाये रखे नासाग्रदृष्टि रखे दान्तों आखों को अधिक खोलै भी नहीं चलाकर भींचै मींचै भी नहीं मुखको प्रसन्न रखे। नींद वा आलस राग अरति शोक काम भय हास्य ग्लानि को छोड़कर ध्यान करै पांचों पापोंका त्याग करै। ध्यानके प्रथम-अनुकूल सामग्री बनाने का लक्ष्य रखै। हां ध्यान प्रारम्भ कर देने पर तो पुनः भले ही वज्रपात सिंहआक्रमण, घोर वर्षा परीषह कैसे भी उपसर्ग उपस्थित हो जायें उनको समता परिणामों से सहै भले ही सन्यासमरण हो जाय। "यो वज्रपातेपि न जात्वपैति"।

ध्यान करते समय इष्ट अनिष्ट अर्थों में मोह राग द्वेष

नहीं करो निज को निज परको पर पहिचानो। चित्त को स्थिर बनाये रखो। तपश्चरण दान और ध्यान करने में स्व-शक्ति का लक्ष्य रखो शक्ति अनुसार ही योग निरोध करो शक्ति का अतिक्रम करोगे तो मस्तिष्क हृदय और इन्द्रियों की क्षति उठाओगे। बलाढ्य नारायण कोटिशिलाको उठा लेता है किन्तु नगण्य निमित्तसे कदली-घात मरण को प्राप्त हो जाता है। इन्द्र जम्बू-द्वीप को पलट सकता है ढाई द्वीप को नहीं। अनन्तवीर्य मुनिने इन्द्रको शारीरिक बल में हरा दिया था। शक्तियां परिमित हैं। हां मन अ-धिक न लगे तो परमेष्ठीवाचक मन्त्रों की जाप्य दो अथवा पंचपरमेष्ठी के गुणों का चिन्तन या बारह भावनायें भावो। इच्छाओं को कम करो आत्मा में आत्मा स्थिर होकर रमण करै ऐसा प्रयत्न करो। मन वचन काय की अन्यचिन्तन बोलना, चेष्टाओंको न कर द्रव्य स्वभाव का चिन्तन करो।

"एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि,
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं"।

एक द्रव्य में जितनी अतीत अनागत वर्तमान पर्यायें हैं उतना ही नियत लम्बा चौड़ा वह अखण्ड परिपूर्ण द्रव्य है। जीव पुलद्गल आदि सभी द्रव्य इन भाव अभाव शक्तियों से तदात्मक गुम्फित हो रहे हैं। 'स्वपरा-दानापोहन-व्यवस्थापाद्यं खलु वस्तुनो वस्तुत्वं (राजवा-

र्तिक) प्रत्येक वस्तु को स्वअंशों का उपादान और परकीय अंशों का त्याग करना ही पड़ता है। सभी पदार्थों में भाव अभाव धर्म भरपूर लद रहे हैं। चैतन्य सुख चारित्र वीर्य सम्यक्त्व रूप रस गंध स्पर्शद्रव्य गतिहेतुत्व आदि भावात्मक गुण हैं। इसी प्रकार अव्याबाध अमूर्तत्व नास्तित्व प्रागभाव ध्वंस अत्यन्ताभाव अन्योन्याभाव आदि अभावात्मक धर्म हैं।

हमारे आपके सिर पर मुंह में सिंहाभाव सर्पाभाव आदि अनन्त अभाव लद रहे हैं तभी हम निरापद चैन से हैं। एक अभाव का भी तिरस्कार कर देने से उसी समय सर्प या व्याघ्र सिर पर खड़ा हो जायगा। इसी प्रकार सौ वर्ष आगे पीछे के प्रागभाव ध्वंस अभावों की उपेक्षा कर दोगे तो असंख्य पशु कीट मनुष्योंके मर कर उठ बैठने से या प्रथम जन्म ले लेने से आजकल के जीवित मनुष्यों को खाने को एक दाना और ठहरने को एक अंगुल स्थान नहीं मिलेगा। श्री समन्तभद्राचार्य ने आप्त मीमांसा में 'कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निन्हवे' आदि श्लोकों द्वारा इस सिद्धान्त को बहुत बढ़िया ढंग से पुष्ट कर दिया है। ध्यान में लोक-व्यवस्था का भी चिन्तन कर सकते हो।

ध्यान यद्यपि चेतना गुण की ज्ञान पर्यायों का पिंड है तो भी ध्यान में चारित्र गुण की परिणति भी संकीर्ण

हो रही है जैसे कि कषाय और योग का मिश्र परिणाम लेश्या है। आत्मा के सम्यक्त्व, चारित्र, चेतना, सुख, वीर्य इन पांच गुणों की ही तो संसार अवस्था में विभाव परिणति हो गई है। शेष अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुणों की तो विशुद्ध स्वाभाविक पर्यायें हो रही हैं। शुद्ध आत्मा में चारित्र गुण की क्षमा, मार्दव, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शौच, चारित्र आदि स्वरूप स्वाभाविक संकर परिणति हो रही है। वीर्यगुण का क्षायिक दान, लाभ, बल, भोगोपभोग रूप संकर स्वभाव परिणाम है। चेतना का केवलदर्शन, केवल ज्ञान मिला हुआ परिणाम है। यों गुणों के स्वाभाविक वैभाविक एक मिश्र संकर पर्याय शक्ति-रूप से अनेक जाति के परिणमन होते रहते हैं।

जैसे हिंसा कृतघ्नता, विश्वासघात, मायाचार शिकार खेलना, व्यभिचार आदि भावरूप दोष प्रसिद्ध हैं ही, तद्वत् ब्रह्मचर्य, प्रतिमाधारण देवदर्शन, क्षमा, गुरु-प्रशंसा आदि गुणों का न करना भी ये अभाव रूप दोष हैं। एकेन्द्रिय विकलत्रय जीवों के ऐसे गुणाभाव रूप दोषों से पापास्रव होता रहता है। भले ही ये विचार-शून्य जीव दर्शन मोहनीय के आस्रव का कारण माना गया केवली, शास्त्र, संघ का भावरूप अवर्णवाद कण्ठोक्त नहीं करें। फिर भी केवली, संघ, शास्त्र और धर्म की पूजा, स्तुति, ध्यान

न करना भी अवर्णवाद है। यों मिथ्यात्व कर्म बंधता रहता है। तत्वार्थों का श्रद्धान नहीं करना राजवार्तिक आठवें अध्याय प्रथम सूत्र की वार्तिक में मिथ्यात्व विभाव कहा गया है देख लो। इसी प्रकार अभाव रूप अविरति भी बंध का कारण नित्य-निगोदिया या एकेन्द्रियों में है ही। कषाय प्रमाद और योग तो भावस्वरूप ही विद्यमान हैं। ये भी माया लोभ करते हैं कोई वृक्ष चालाकी से कीड़ों को पकड़ लेता है धन, खाद्य, पेय की ओर जड़ें फैलाता है।

सखियों द्वारा अन्य वरों की प्रशंसा करने पर अंजना चुप रह गई अंजना ने पवनंजय की प्रशंसा नहीं की इसी अभावरूप दोषकी भित्तिपर पवनंजय कुमार आग बबूला हो गया था और अंजना को बाईस वर्ष तक पति-वियोग का दुःख सहना पड़ा। "मौनमर्ध-सम्मतिः" ऐसा नीति वाक्य भी हैं।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय के ज्ञानवानों की प्रशंसा, सत्कार पूजा, सन्मान, विनय आदि नहीं करना रूप प्रदोष, निन्हव, मात्सर्य, सदा पाये जाते हैं यों उनके ज्ञानावरण बंधता रहता है। जल वायु, पाषाण, अग्नि, वनस्पति ये एकेन्द्रिय जीव विचारे भूत या व्रतियों पर अज्ञात अनिच्छा पूर्वक मन्द अनुकम्पा और दान करते ही हैं। पंसारी टोला, धान मण्डी, तरकारी बाजार सब प्रासुक अप्रासुक एकेन्द्रियों से

भरे पड़े हैं। यों उनके साता वेदनीय बंध जाता है। ये दुःख भी देते हैं। पानी प्राणियोंको डुबा कर मार देता है आग जला देती है यों इनमें असाता वेदनीय का आस्रव हो जाता है। स्वनिन्दा, परप्रशंसा न करने से नीच गोत्र कर्म आ जाता है। एकेन्द्रिय विकलत्रय प्राणी अनेक विघ्न भी करते हैं ये अन्तराय के आस्रवके हेतु हैं। श्री तत्वार्थ सूत्र छठे अध्याय के छठे सूत्र में अज्ञात भावों से भी कर्मास्रव होते रहना कहा है। अज्ञातकृत्य भी कर्म बंध करा देते हैं। एकेन्द्रियों के स्थिति बन्ध अत्यल्प होता है इसका कोई महत्व नहीं हैं। नीतिवान् राजा के जाने बिना कोई अज्ञात व्यक्ति अभय प्राप्त कर ले। सुराज्य में चाहे जहां निर्द्वन्द्व तीर्थयात्रा या व्यापार करें। सरकारी "शफा खानों या पंचायती औषधालयों से चाहे कोई अनजान व्यक्ति औषधियां प्राप्त करले, प्रकृष्ट देशनेता भले ही जनता के अज्ञात, अनिच्छ रूप से लोकोपकार कर रहे हों। यदि बिना जाने आपके रक्षित गेहुओं को चूहे, गिलहरी, बन्दर खा जायं या किसान के खेतों में से अनेक पक्षी, पशु अन्न घास खा जांय अथवा निःस्वार्थ विद्वान् से अज्ञात व्यक्ति ज्ञान दान प्राप्त करले तो मित्र ! राजा, पंचायत नेता किसान विद्वानों को थोड़ा सा तो पुण्यबन्ध हुआ मान ही लो। 'अज्ञातों पर परोपकार कर रहे उन्हें पुण्य बन्ध

नहीं होगा' ऐसा तो न कहो। तद्वत् एकेन्द्रियों के अज्ञात भावों या क्रियाओं से पुण्य या पाप होने को मान लीजियेगा। राजा आदि दृष्टान्त संज्ञी हैं एकेन्द्रियों के मन नहीं है यों कह देने से अज्ञात क्रियाओं में विशेष अन्तर न पड़ा अच्छा कुछ कमती आस्रव होगा, आधे २ पर निर्णय (फैसला) करलो, यों सही, "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः"।

एकेन्द्रियों में अभाव-रूप दोष भी अनेक पाये जाते हैं जैनों के यहां तुच्छ अभाव नहीं माना गया है किसी का भी अभाव प्रतिपक्ष का भाव स्वरूप है या आधार रूप है कृतज्ञता का अभाव कृतघ्नता है शीत का अभाव उष्ण चोरी का अभाव अचौर्य और मूर्च्छा का अभाव आकिञ्चन्य धर्म है। तभी तो जिनदर्शन न करना, जिनपूजन न करना संयम न पालना, अष्टमी चौदशको हरी न छोड़ना इन्द्रिय विजय नहीं करना, पानी न छानना ये भी बड़े भारी दोष माने जाते हैं। हमारे और आप के भी इन अभाव रूप दोषों से अनेक दुष्कर्म आते रहते हैं। लोक में भी उपार्जन न करना, बच्चों को न पालना, न पढ़ाना, परोपकार न करना कृतज्ञ न बनना ये बड़े दोष माने गये हैं।

यदि मंत्रक "वित्रण विगंध विमान विलोभ विमाय विकाय विशब्द विशोभ अनाकुल विदम्भ वितृष्ण विदोष

विनिद्र, विहार विराव विरंग विमोह" इत्यादि अभाव स्वरूप अपनी आत्मा या सिद्धों का चिन्तन करने से पुण्यास्रव हो जाना आप मानते हैं तो व्रतधारणाभाव, संयम पालनाभाव, क्षमा अभाव, ब्रह्मचर्य अभाव आदि अभावों से एकेन्द्रिय विकलत्रय जीवोंके पापास्रव हो जाना भी सुघटित है। द्रव्य गुण पर्यायें सभी भाव और अभाव से गुम्फित हो रही हैं किसी जैन ने यदि परिग्रह-परिमाण नहीं किया है हरित कायिक या रसों की अथवा देश दिशाओंकी मर्यादा नहीं की है तो भले ही वे बाहर की वस्तुऐं उसके उपयोग में नहीं आवें किन्तु अविरतिजन्य पापास्रव होता ही रहेगा अभाव बड़ा काम करते हैं इसे भूलना नहीं। सम्पूर्ण पदार्थों में परस्परापेक्ष अन्योन्याभाव पड़े हुये हैं। नास्तित्व धर्म अगुरुलघु गुण भी है। तभी तो वर्तमान के प्रत्येक मनुष्यों, स्त्रियों, बालकों, देवों, नारकियों, घोड़ों बकरियों, कबूतरों, चूहों, मक्खियों घुनों अन्य विकलत्रयों जुओं गेहुओं मूंगों बाजराओं अमरूदों केलों आदि की सम्पूर्ण सूरतें मूरतें न्यारी २ हैं। रस गन्ध भी भिन्न २ हैं यही सर्वव्यापी भेद भूत, भविष्य-कालीन सभी उक्त पदार्थों में केवल-व्यतिरेकी रूप से ओत प्रोत प्रविष्ट हो रहा है। "सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे"।

(देवागमस्तोत्र)।

यदि भेद को न माना जाये तो सर्वपदार्थों की मिल कर एक चटनी बन बैठे तथा च चालिनी न्याय से सब का मटियामेट हो जायेगा। स्वकीय अस्तित्व ही नहीं ठहरै। सप्त-भङ्गी में पड़े हुये कल्पित अस्तित्व धर्म से वस्तुभूत अस्तित्व गुण न्यारा है। अच्छा सुनिये—

विकलत्रय जीव अनेक उपकार भी करते हैं। छोटा बड़ा गेंडुआ किसानों का महोपकारक है। खेत की भूमि को नरम करता है खोदता है उन छेदों में अंकुरों की जड़ें सरलता से घुस जाती हैं मर कर खाद बन जाता है कोई भोले किसान गेंडुओं को भगवान् कह देते हैं। सीपें अज्ञात भाव से मोती को पैदा करती हैं। तीतर का खाद्य हो रही दीमकें सर्पों को अपना बना बनाया घर(ऊंची कोठी) दे डालती हैं। पहाड़ी विषधर बिच्छू पत्थर में डंक मार मार कर उसको बढ़िया विष बना देते हैं जिसको शुद्ध कर विषगर्भ तैलादि उत्तम औषधियां बनाई जाती हैं। मधु मक्षिकायें मधु (शहद) बनाती हैं। मधु सेवन से जिस रोगी को लाभ हुआ है उसके पूर्ववर्ती साता वेदनीय पुण्य का उदय ही है। हां अभक्ष्यभक्षण से वर्तमान में पाप कर्म भले ही बन्ध जाय। जिस चोर को जाते ही झट माल मिल जाये, परस्त्री-गामी को नवोढा या सुन्दर वेश्या प्राप्त हो जाये शिकारी के सन्मुख वध्य पशु पक्षी आजायं, डांके

वाले को निधान हाथ लगजाये, मांस भक्षी को आमिष दीख जाय, चटोरा को चांट दही, बड़े, जलेबी बिस्कुट दे दिये जायं तो उस समय इन पापियों के पूर्व-संचित पुण्य का उदय समझा जायेगा।

हां इन कुकृत्यों से तत्काल तीव्र दुष्कर्मों का बंध हो जाना अनिवार्य है। आबाधा काल और अचलावलि के बाद पाप फल भोगना ही पड़ेगा। उदीरणा के कारणों अनुसार पहिले भी भोग सकोगे। काष्ठाङ्गार को पुण्य से राज्य मिल गया। हां विश्वास-घात करने से कठोर पाप बन्ध कर नरक गया। तत्काल लौकिक सुख अनुभव कराने वाला पुण्य और दुःख वेदन कराने वाला पाप है तभी स्पर्श आदि चार पिंड प्रकृतियां दोनों में गिनी हैं। परघात तिर्यंच आयु पुण्य है उपघात तिर्यग्गति पाप हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह अभक्ष्य सेवन आदि अनेक पापों का काथ एक विश्वासघात है। चारित्र गुण के विभाव सङ्कर परिणाम भी हो जाते हैं। लोभ, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद तथा पांच पाप सप्त व्यसन या अन्य दोषों से भी मिली एक सङ्कर पर्याय हो रही है। कभी एक चारित्र मोहनीय की परम प्रधानता से और इतर कर्मों का प्रदेशोदय हो जाने से असङ्कर पर्याय हो जाती है।

अर्धचक्री बड़े पुण्य योग से बनते हैं यहां तक कि तीन नरकों से निकल कर जीव तीर्थङ्कर हो जाते हैं। (भवणतिए णत्थि, तित्थयरं) किन्तु अर्धचक्री नरक और भवनत्रिक से नहीं आते। वर्तमानमें पुण्योदय को भोग रहे ये हिंसा परस्त्री-हरण बहु आरम्भ परिग्रह के रुद्र परिणाम करने से अधोलोक को जाते हैं।

देखो चार भंग हैं (१) पाप उदय है और जीव पुण्य को उपजाता है जैसे परीषह उपसर्ग सहना स्वयं सेवकत्वमें विघ्न सहना। (२) पुण्य जन्य कार्य है और पाप जनक हैं। भोज्य होते हुये भोग भोगने की शक्ति राज्यसम्पदा नीरोगअदरिद्र यौवन मद कठोराधिकार। (३) पुण्य से उत्पन्न पुण्य ही का उत्पादक भाव। जैसे श्रावक मुनियोंको दान शरणार्थियों को भोजन, वस्त्र, गृह, आजीविका, धन देकर सहायता करना, मारने वालों से बर्र, चूहा, कुत्तों, पक्षियों बलिपशुओं को बचाना, परोपकार, बिम्ब प्रतिष्ठा कराना, चैत्यालय बनवाना, पर कल्याण, (स्व कल्याण तो संवर जनक है) (४) पाप का ही बेटा पाप का ही बाप जैसे भिखारीपन मुड़चिड़ापन, तीखीकृपणता, शोक, अनुताप, आक्रन्दन, ईर्ष्या, परनिन्दासक्ति. अभीक्ष्ण-रोगित्व, गुणी की अपकीर्ति करना, धर्मावर्णवाद, चिर दरिद्रता, नीति रहित राजा के राज्य में रहना, मूर्खपुत्रत्व

कई वार टोटा आदि।

ये द्वीन्द्रिय आदि जीव स्वयत्न से ज्ञात अज्ञात महान् अपकार भी करते हैं मच्छर मक्खी खटमल टिड्डियां रोग-कीट, दाद प्लेग के कीड़े ये अनेक पशु मानवों को भारी कष्ट पहुंचाते हैं। जुआं खाया गया जलोदर करता है। मकड़ी कोढ़ को उपजाती है, बर्रै या ततैया बिच्छू कांतर डंस वृण के कीड़े काट कर हम आप को दुःखित कर रहे हैं। इनको कुज्ञान न्यून नहीं है। हम आप अपने रक्त को नहीं पहिचानते हैं परन्तु मच्छर खटमलों जोंकों को रक्तपरीक्षा (ब्लड टैस्ट) करना अच्छा आता है वहां बढ़िया स्वादु अल्पश्रम साध्य रक्त है यह सो रहा है या जाग रहा है ? इन बातों को वे झट जांच लेते हैं। योग्य समय पर ये डांका डालने के लिये निकलते हैं।

एकेन्द्रिय विकलत्रय जीवों के इन्द्रिय-लोलुपता कषा-यभाव विषय-गृद्धि अधिक हैं चींटियां चींटे सेरों नाज को इकट्ठा कर अपने घरों में गुप्त रख लेते हैं कोई भी चींटी वर्षा में नहीं भीगती है। वे प्रथम से ही मेंह, आंधी का परिज्ञान कर अपने सुरक्षित घरों में पहुंच जाती हैं। भले ही प्रमादी पुरुष या पशुओं के देखे बिना टट्टी पेशाब करने में सैकड़ों चींटियां मर जायें क्योंकि अदृष्ट मृष्ट मल उत्सर्ग करने वाले जीवों ने चींटियों को धोका दिया है। इसमें

चींटियों का अपराध नहीं है। ढूंढते हुये कुछ खाद्य को पाकर एक चींटी अपने संग की हजारों लाखों चींटियों को इकट्ठा कर लेती है। चींटियों की पंक्ति आते जाते अपनी बिरादरी से संकेत द्वारा बातें कर लेती हैं। कटारदान में बीस गज दूर पर मिष्टान्न रक्खा है उसमें छोटी जाने आने योग्य सन्द भी है। कटोरदान पानी के किले या छींके के गढ़ पर धरा है। वह गम्य है या अगम्य है इन सब बातों को वे कुश्रुतज्ञान से जान लेती हैं चींटियों को ऐसे प्रतिबन्धों का ज्ञान प्रथम से ही अपने कुश्रुत से हो जाता है वे घर से ही नहीं निकलती हैं। श्रुतज्ञान से कुश्रुतज्ञान तीव्र होता है। अवधिज्ञान से विभङ्ग चंट है। त्रीन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आयु ४९ दिन और चौइन्द्रिय की ६ मास है। जघन्य श्वास के अठारहवें भाग है।

चींटियां अपने सम्मूर्छन अंडोंको बनानेके लिये न जाने कहां २ से सफेद द्रव द्रव्य लाती हैं। कुछ देरके मलमें उपज गईं चावल के हज़ारवें भाग छोटी २ लटों को मुंह से पकड़ कर पुनः मारकर गोल अण्डा सा बना लेती हैं उन अण्डोंको विलक्षण रासायनिक प्रक्रिया से सेवती हैं कभी अण्डों को हवा में रख देती हैं। सात दिन में वे अण्डे काली चींटियां बन जाते हैं। लाल काले चींटे भी वृक्षों के पत्र झुंड में या भूमिछेदों में ऐसी ही जनन प्रक्रिया से सम्मूर्छन चींटों

को बना लेते हैं। ये चींटा चींटियों के अण्डे कोई मिथुन संयोग–जन्य पेट से नहीं निकलते हैं। इनका अण्ड जन्म नहीं, किन्तु सम्मूर्छन जन्म है।

ततैया, वर्र भी इसी प्रकार मक्खियों या अन्य कीड़ों को घातकर अपने छत्तोंमें लाकर बड़ी रासायनिक प्रक्रिया से कुछ दिन बन्द रखकर पतला लेप लगाकर छोड़ देते हैं। दस पांच दिन में वे सब ततैया वर्र बन जाते हैं। भौंरी (अंजिन यारी) बड़ी गवेषणा से झींगुर को पकड़कर डंक से मारकर अपने स्वनिर्मित बढ़िया चीकनी मिट्टी के निरुपद्रव घर में धर देती है। जनन रसायन प्रक्रिया करती है पुनः गर्भस्थान का मुख ऋजु लेप देती है कुछ दिनोंमें वह झींगुर का मरा हुआ शरीर ही अंजनिय री का सम्मूर्छन काय बन जाता है। मधु मक्खी के जन्म, देशान्तरगमन, मधु अन्वेषण रक्षण या कुमतिज्ञान जन्य कुश्रुत ज्ञानों स्मरणों धारणाओं अथवा लोभ, क्रोध, के कृत्य तो बहुत दिनों तक पठन की सामग्री है।

मकड़ी छतरिया सरीखा चारों ओर ठीक नाप का जाल पूरती है। दूसरी जाति की चौइन्द्रिय मकड़ी दो भींति की संद में योनि स्थान बनाती है, न जाने कहांसे स्वापत्यशरीर योग्य नौ लाख कुल कोटि पदार्थों में से छेक कर क्या २ रसायन लाती है उसके ऊपर पांच पी के लड्डा से भी बढ़

कर स्वच्छ, शुक्ल रेशम बनाकर खूब कसकर उढ़ा देती है स्वयं बाहर चली जाती है। कुछ काल पीछे उस गर्भागार में से दसों मकड़ियां उपज कर बाहर आ जाती हैं।

गोम्मटसार में इन योनि और कुलों का वर्णन किया है। मैंने इस जीवशरीरोत्पत्ति प्रक्रिया का कुछ स्वपनसा अध्ययन किया है। यहां इस रहस्य को लिखने का तात्पर्य यह है कि ऐसी करतूतें, मायाचार तीव्र लोभ, ताप क्रोध, सन्तानोपार्जन, गृहनिर्माण कला, स्वइष्टोपाय ढूंढना खाद्यसंग्रह, मिलकर शत्रु पर चढ़ाई करना ये सर्व प्रयत्न एकेन्द्रिय विकलत्रयोंके पाये जाते हैं। ये सब उन अनन्तानुबन्धी कषायों के कार्य हैं जिन कषायों के साथ व्यक्त अव्यक्त, अज्ञात रूप से प्रदोष, निन्हव, केवलि अवर्णवाद संघ अवर्णवाद, निःशीलत्व, योगवक्रता, परनिन्दा, विघ्न करण आदि दोष पाये जाते हैं यों एकन्द्रिय और विकलत्रयों के सजातीय कषाय योगों द्वारा अष्ट कर्मों का चतुर्विध बन्ध होता रहता है। कर्मों में स्थिति न्यून पड़ती है अनुभाग तीव्र पड़ता है। अनुभाग ही पक्का बन्ध है इनका कुज्ञान अपेक्षाकृत न्यून नहीं है बड़ा वढ़िया है।

कोई उच्च वैज्ञानिक या आविष्कारक हजारों यंत्रों या पुद्‌गलों की सहायता से इन जीवित शरीरों को नहीं बना सकता है। कतिपय एकेन्द्रिय, विकलत्रय जीव तो स्वयं

अपने सजातियों को बना लेते हैं। हां दूसरे सम्मूर्छन जीव जैसे छोटी २ मछलियां, मेंड़कियां, मक्खियां, घुन, गिड़ारैं, मच्छर, चौमासेकी रात्रि या दिन में उपजे असंख्य जीव तो स्वयोग्य कुल योनियोंमें निज कर्मवश मात्र अपने शरीरों को बना डालते हैं स्वापत्यों को नहीं। ये जीव सम्मूर्छन हैं इच्छा वश स्वापत्य शरीरोंको नहीं बना पाते हैं।

श्रोता जी! अनन्तानन्त जीव प्रतिक्षण मररहेहैं वे कर्मयोग द्वारा नोकर्मोंका आकर्षणकर पुनः अन्य योगों द्वारा कर्म नोकर्मों को खेंचकर स्वपर्याप्तियों से अपना शरीर तैयार करते हैं। जीव-शरीरों की सृष्टिके ढंग कई प्रकार के हैं। द्वादशाङ्ग में इन की उत्पत्ति प्रक्रिया अतीव विस्तृत गूंथी होगी। कभी उसका भी अध्ययन करेंगे। भावना ऊंची रक्खो।

भावार्थ-पथरी, सैंधव, वनाग्नि, वात्या, निगोदिया, कठफूला, काई, साधारण, अमरबेल, शंख, सीप, चावल की लट, जुआं, लीख, इन्द्रगोप (राम की गुड़िया) सड़ी कचौड़ी, सड़े अमरूदके जीव, फोड़ेके कीट, मांस रक्त जीव तंदुल राघव मत्स्य आदि अपने शरीरों को तत्काल तैयार कर लेते हैं अर्थात् योग्य कुल योनिस्थान मिलते ही झट उनका आहार कर स्वकीय योग पर्याप्तियों कार्मण शक्ति

से प्राण मन वचन काय इन्द्रियोंको संमूर्छन बना डालते हैं । ये स्वकीय जाति वाले अपत्यों के शरीरों को नहीं रचते हैं मात्र अपना गात्र बनाया करते हैं ।

प्रति समय अनंत जीव मरते हैं । वे उसी सम योग्य योनियों में जन्म ले रहे हैं । कार्मणकाययोग के एक दो तीन समय भी चालू इसी उम्र में गिने जायंगे। इन सूक्ष्म तत्वोंका वर्णन गोम्मटसार में है । अन्य विशाल शास्त्रों या प्रति-पत्तिक श्रुत अथवा द्वादशांग में अतीव विस्तृत प्रतिपादन किया गया होगा । ओं नमः द्वादशांग वाण्यै सरस्वत्यै ।

इस प्रकार भाव अभाव परिणामोंका पर्याप्त विवेचन हो चुका है । आप प्रबोधकर चुके होंगे अभावको थोड़ा और आगम प्रमाण से समझ लो ।

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे-न दैन्यं न पलायनम् । (उक्तञ्च) अर्जुनकी दो ही प्रतिज्ञायें थीं दीनता न करना और युद्ध से भागना नहीं । 'अप्रादुर्भावः खलु, रागादीनाम् भवत्यहिंसेति ।

(अमृतचन्द्र सूरि)

राग आदि नहीं उपजना ही अहिंसा है,

अहिंसा भूतानाम् जगति विदितं ब्रह्म परमं ।

न सा तत्रारम्भोस्त्यणुः (श्री समन्तभद्राचार्य)

अणु आरम्भ से भी रहित हो रही अहिंसा परमब्रह्म

स्वरूप ही है।

आर्तरौद्र–परित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतं,

इन्द्रियवृत्तिनिरोध, जीववध अभाव, स्वरूप संयम के साथ आर्तरौद्र ध्यानों का नहीं करना सामायिक है।

क्रोधानुत्पत्तिः क्षमा कालुस्याभावः क्षमा।

(राजवार्तिक)

क्रोध या कलुषता नहीं उपजाना क्षमा है,

कार्योत्पादः क्षयो हेतोः। (आप्त-मीमांसा)

उपादान कारण मानी गई पूर्वपर्याय का क्षय हो जाना ही उत्तर पर्याय का उत्पाद है।

भिक्षुका नैव याचंते बोधयन्ति गृहे गृहे,

दीयतां दीयतां लोकाः, अदानात् फलमीदृशम्।

(नीति)

कवि कहता है कि भिखारी लोग मांगते नहीं हैं किंतु घर २ में जाकर लोगों को समझाते हैं कि हे मनुष्यो दान करो, दान करो, देखो दान नहीं करने से हमारे सदृश दीन, दुःखी, दरिद्र, रुग्ण, दयनीय अवस्था हो जावेगी। द्वार २ भीख मांगते फिरोगे।

दुर्वारं नरकान्धकूपपतनं, जिनार्चा न रचयन्ति तेषां।

(सूक्ति मुक्तावली)

जिन पूजन नहीं करने से अन्धकूप नरक में पतन होना अनिवार्य है। असंज्ञी जीव अविरति, अप्रत्याख्यान,

अब्रह्म, अल्पारम्भाभाव, अल्प परिग्रह अभाव इन से प्रथम नरक जाता है।

राजवार्त्तिक छठे अध्यायमें-आचार्य उपाध्यायके अनुकूल न चलना, श्रद्धा अभाव, नास्तिक्य अनुकम्पा अभाव, अनुत्सेक, निःशीलत्व, तत्वानुपलब्धि, अविसम्वाद, अभिवादनाभाव, द्रव्यापरित्याग, प्रशस्तक्रियाओं का न करना, अनिवृत्ति, अप्रत्याख्यान क्रिया, निर्दयत्व इन अभावों से भी कर्मास्रव होते रहना बताया है।

कोऽसौ द्रव्यार्थिक इति पृष्टास्तच्चिन्हमाहुराचार्याः।।५६७।।

व्यवहारः प्रतिषेध्यस्तस्य प्रतिषेधकश्च परमार्थः।
व्यवहार प्रतिषेधः सएव निश्चयनयस्य वाच्यःस्यात्।।५६८।।
व्यवहारः स यथा स्यात्सद्द्रव्यं ज्ञानवांश्च जीवो वा।
नेत्येतावन्मात्रो भवति स निश्चयनयो नयाधिपातिः
।।५६९।।

(पंचाध्यायी)

६०२, ६०४, ६०५, ६०७, ६०८, ६०९वीं गाथाओं को भी पढ़ लो। इनका प्रस्तुत ऐदम्पर्य यही है कि व्यवहार नय के विषय हो रहे सभी विधानोंका निषेध करना ही निश्चय नय का विषय है। वह नय ज्ञानाभाव अनुपयोग (तुच्छ) नहीं किन्तु अर्थाकार लम्बा, चौड़ा विकल्पज्ञान है। क्षपक श्रेणी में कर्मों को काटता है।

इसप्रकार सर्वत्र भाव अभावका व्यापक साम्राज्य है। चारित्र गुण की एक समय-वर्ती पर्यायमें भावांश अभावांश रूपसे रली मिली परिणति को तो देखो, मुनि के अठाईस मूल गुण चारित्र गुण के परिणाम हैं। आचार्य की तीन गुप्तियां अभाव-प्रधान हैं। साधु की पांच समितियां भाव-प्रधान हैं। अहिंसा (अभाव) सत्य(भाव)अचौर्य (अभाव) ब्रह्मचर्य (भाव) अपरिग्रह (अभाव) पांच इन्द्रियों का निरोध अभाव रूप है षट् आवश्यक भाव-रूप हैं। सात स्फुट मूल गुणों में भूशयन, लोच, एक भक्त, उद्भुक्ति (खड़े आहार लेना) ये भावांशों को लिये हुये हैं। अस्नान, अदन्त धावन, अवस्त्रत्व ये अभावों को पकड़ बैठे हैं। इसी प्रकार दशों धर्मों, वाह्यतपों और चौरासी लाख उत्तर गुणों में या शील के अठारह हजार भेदों में भी भाव, अभाव से संस्कृत परस्पर सहोदरत्व (भाई चारा) को लिये हुये एक रली मिली पर्याय हो रही है। सिद्धों के आठ मूल गुणोंमें भी सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य ये चार भावात्मक हैं। और सूक्ष्मत्व (अमूर्त्तत्व) अवगाह, अव्याबाध, अगुरुलघु ये चार अभावात्मक हैं। जन्म और मृत्यु का समय एक है।

देवदत्त की आयु यदि साठ वर्ष है बस इकसठिवें वर्ष के प्रथम समय में उसका मरण है तभी अग्रिम पर्याय का

जन्म है। उसी का उत्पाद उसी का व्यय एक समय में नहीं हो सकता है, विरोध है। सौंफ, बादाम, काली मिर्च, इलायची, बूरे की ठण्डाई नामक एक बन्ध पर्यायमें मिला हुआ एक चित्र रस है और रासन प्रत्यक्ष भी संकीर्ण है। तभी तो बूरा कम है मिर्च अधिक है, यों बता देते हो। पेट में जाकर पित्ताग्नि, मस्तिष्क, आंख, हृदय, आदि न्यारे २ अवयवों में जीव-पुरुषार्थ से इन का बटवारा हो जाता है। पांचों रंगोंके मिश्रण हो रहे चित्ररूप और तज्ज्ञानमें भी यही खिचड़ी दशा है। सौ गज दूरसे मेलाका शब्द सुनिये, अनेक शब्दों के मिश्रण और श्रावण प्रत्यक्ष में भी यही छूत घुस रही है। सर्वत्र ज्ञान, ज्ञेयों में चित्रता ओत प्रोत रम रही है।

एक माध्यमिक दार्शनिक ने तो अकेला चित्राद्वैत तत्व ही स्वीकार कर लिया है। उनका अनुभव है कि—
"किंस्यात् सा चित्रतैकस्यां न स्यात्तस्याम्मतावपि। यदीदं स्वयसर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम् (प्रमेयकमलमार्तण्ड)।"

व्यग्र या प्रसन्न होकर माध्यमिक बौद्ध कहता है कि यह चित्रता अकेली बुद्धि में भी घुस रही है। अर्थों में भी प्रविष्ट हो रही है। सभी प्रमेय प्रमाणों को यह चित्रत्व बड़े आनन्द से रुच रहा है तो इस सिद्धान्त में हम क्या कर सकते हैं? हमें कौन पूछे? जैसा है वैसा कह दिया

है। "तत्रानवस्था परमार्थतत्त्वं" (श्री महाविद्वान् धनञ्जय)

हे जिनेन्द्र नियत अवस्था नहीं होना ही आपके मतमें सर्वोत्कृष्ट तत्व माना गया है।

अब आपके सद्विचार में यह सिद्धान्त स्फुरित हो गया होगा कि एकेन्द्रिय, नित्यनिगोदिया विकलत्रय असंज्ञी लब्धि अपर्याप्तक और मरकर विग्रह-गति में पाये जा रहे जीवों में भी युक्त्यागमोक्त इन भाव अभाव रूप दोषों से अष्ट कर्मास्रव प्रति-क्षण होता रहता है। विग्रह गति में मात्र आयुष्य कर्म का आस्रव नहीं होता है। अन्य सातों कर्म आते रहते हैं। यों मूर्छित, रोगी, समाधिस्थ, मत्त, सन्निपाती, त्यागी, श्रावक मुनि, जी रहे मर रहे गृहीत मिथ्यादृष्टि, अगृहीत मिथ्यात्वी, अज्ञानी, चतुर्गति के जीवों यानी प्रथम से ले कर दसवें गुणस्थान तक सभी संसारियों के सतत कर्मास्रव होता रहता है। कारण डट रहे हैं। कार्य होगा ही। समझाना लम्बा हो गया है। मैं भी थक गया हूं।

जीवोंकी शरीर-रचना पर यह परामर्श और भी करना है कि प्रति-क्षण मर रहे असंख्य जीव उन वर्गों आदि कर के बनाई गई या कारणों अनुसार बन बैठीं योनिस्थलियों में यथोचित जन्म ले लेते हैं। भावार्थ-तीन लोक में अगणित स्थानों पर अनन्त योनि-स्थल बन रहे हैं। मर

गये जीवों के अनन्त कर्मों का उदय आ रहा है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सामग्री पाकर तैसा कर्मोदय फल दे बैठता है। जीव चौरासी लाख जाति की योनियों में से यथोचित एक योनि में जन्म लेकर योग्य कुल, कोटि–आपन्न पुद्गलों का आहार कर लेता है। जैसे कि कोई द्विदलभक्षी जब दही, वेसन, लार का योग मिला देता है यहां वहां मर रहे असंख्य जीव झट वहां त्रस जन्म ले लेते हैं।

कर्मोंके फलोदय हो जानेमें मात्र स्थिति पूरी हो जाना ही कारण नहीं है। योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी कारण हैं। "द्रव्यादिनिमित्त–वशात् कर्मणाम् फलप्राप्तिरुदयः" (श्री अकलङ्कदेव)।

किसी जीव के मरते समय तिर्यञ्च आयु और त्रस कर्म का उदय है। उस अवसर पर कहीं द्वीन्द्रिय के योग्य कुल या जाति खाली पड़ी है बस वहां ही वह जीव जन्म ले लेगा। भले ही उस जीवके पश्चात त्रस व्याप्य त्रीन्द्रिय कर्म को भी उदय काल प्राप्त हो गया हो वह कर्म दब जायेगा या संक्रमण हो जायेगा, प्रदेशोदय हो जायेगा तथा उसे अग्रिम जन्मों में पुनः कभी संभाल लेंगे। कर्मों की उदय के समान उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उदीरणा, उपशम आदि दशायें भी हो जाती हैं। कर्मों में असंख्याते

वर्षों की स्थितियां पड़ी हुई हैं। आज ही कोई ऐसी आवश्यकता नहीं पड़ी है जो कि अनिवार्य फल उदय हो ही जाय। जिन प्रकृतियों का फलोदय नितान्त आवश्यक है उन का फल भोगना ही पड़ेगा। आयु का उदय अत्यावश्यक है। उसकी अविनाभावी प्रकृतियोंका भी। देवोंके असाता और नारकियों के साता का भी उदय रहता है। किन्तु योग्य क्षेत्र न होने से फल नहीं दे पाता है।

कदाचित् यदि कोई उच्चगोत्र, मनुष्य आयु, प्रशस्त साता, आदि पुण्य प्रकृतियों के उदय वाला जीव जन्म ले रहा है तब किसी धनाढ्य भाग्यशाली के घर में यदि योग्य गर्भाशय खाली नहीं है तो किसी कुलीन गरीब के घर में वह जीव जन्म ले लेगा। गरीब को ही महा धनवान् निहाल कर देगा अथवा गोद चला जावेगा (धन्यकुमार) इसी प्रकार किसी उच्च आत्मा धनिक के पुण्य-हीन जीव जन्म ले बैठे तो धनिकको दरिद्र कर देवेगा (नल)। तभी तो कचित् धनिकों के निर्धन और निर्धनों के धनिक या पण्डितों के मूर्ख, मूर्खों के पण्डित तथा धर्मात्माओं के पापी और पापीके धर्मात्मा लड़के हो जाते हैं। द्रव्य आदि अनुसार अनेक परिवर्तन होते दीख रहे हैं। कथमपि प्रसंग न मिलने पर उत्कर्षण विधि द्वारा कर्मों के उदय भविष्य काल में सरका दिये जाते हैं। शीघ्रता क्या पड़ी है तत्काल

संक्रमण भी हो सकते हैं।

खाया गया या उन्मत्त कुत्ते का विष भी इंजैक्शनों द्वारा निर्विष कर दिया जाता है। छोटी सी अपने रक्त की बनी हुई फुन्सी विषाक्त होकर प्राण ले लेती है। थर्ड क्लास की टिकिट लेकर कोई सैकिण्ड क्लास की गाड़ीमें बैठ जाता है। कभी फर्स्ट क्लास की टिकट खरीद कर तीसरी क्लासके डिब्बे में बैठते हैं। कभी अत्यधिक भीड़ हो जाने से एक दो दिन पीछे भी प्रवास करना पड़ता है कारणों अनुसार प्रवास नहीं भी कर पाते हैं।

कई प्रकारों से कर्मोंका बटवारा, समझौता कर लिया जाता है। कर्मों का बन्ध करके तुम्हीं उनके भोक्ता हो। तत्काल भोगने का आग्रह छोड़ो। कुछ कर्म नहीं भी भोगने पड़ते हैं। देखो सेठ राजा धनपति मानव कितने गरिष्ट माल मेवा घी दूध पकान्न खाते पीते हैं किन्तु क्या सब का सार निकल कर शरीरमें रम जाता है ? नहीं, जो थोड़ा सा रम भी जाता है उस शरीरिक शक्तिका भी क्या सत् उपयोग होता है। कदाचित् गिरनार सम्मेद शिखर की यात्राओं में कुछ उपयोग हुआ समझ लो।

एक चावल के चार सौ परतों में न्यारे २ चार सौ स्वाद हैं। भात के एक कौर में खाये गये दो सौ चावलों में से कितने चावलों के भीतर बाहर का स्वाद आप ले

सकते हैं ? कौर के मात्र ऊपर चिपटे बीस चावलोंका एक ओर का कुछ स्वाद आया, वह भी घी, दाल, बूरे ने बिगाड़ दिया। शेष तो स्वाद लिये बिना यों ही पेट में ढकेल लिये जाते हैं। आपके वस्त्रों की शीतापनोद, लज्जानिवारण शक्ति का कितना सफल उपयोग हो रहा है ? जिनके पास बढ़िया कपड़े बहुत हैं वे उत्तर दें।

बात यह है कि जगत में पुष्प, फल, अन्न, वस्त्र, किताबें, पत्र, जङ्गली ओषधियां, भूमि, पर्वत, जल, चिन्तायें, विमर्ष आदि बहुभाग व्यर्थ जा रहे हैं। संसार नाम मात्र है वस्तुतः सब असार है। भेद-ज्ञान बिना संसार ही निरर्थक है। एक डाक्टर ने कहा था कि एक बार प्रवीचार के द्रव द्रव्य से पांच सौ स्त्रियां गर्भवती हो सकती हैं। एक मनुष्य पर्याय में वह कितना सफल होता है ? कितना व्यर्थ जाता है ? सोच लो। तद्वत् कर्म फलोदयमें भी लगा लो। अकाम निर्जरा और प्रदेशोदय को आप समझते हैं। तथा तप के द्वारा हुई अनन्तानन्त कर्मों की अविपाक निर्जरासे अन्त मुहूर्त में मोक्ष हो जानेकी चर्चा को आप जानते ही हैं। अब दूसरी बात सुनिये।

असंख्याते प्रकारोंके नाम कर्मके उदय से बनी मानवों की न्यारी २ सूरतों का धार्मिक, लौकिक क्रियाओं पर भी प्रभाव पड़ता है। कोई २ मनोज्ञ जाति के मुनि इतने

सुन्दर होते हैं कि उनके नग्न शरीर को देखने के लिये स्त्री पुरुषों की भीड़ इकट्ठी हो जाती हैं। छज्जे टूट जाते हैं ऐसी दशा हो जाने पर कदाचित् आचार्य उस मनोज्ञ का आहारार्थ नगर में जाना रोक देते हैं। शरीर की सुन्दरता शुभ संस्थान, संहनन का आत्मा पर भी प्रभाव पड़ता है। तभी आद्यसंहनन वाले को ही मोक्ष होना कहा है। सातवें नरक जानेका तीव्र पाप भी वही कर सकता है। हां छऊ संस्थानों से मोक्ष हो सकती है।

यहां लौकिक कुबड़ा ठैंगना, कुब्जक वामन का अर्थ नहीं है किन्तु अत्यल्प अगण्य, अदृश्य कुब्जक या वामन मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है जो गठरिया कुबड़ा है या दो ढाई हाथ का वामन है उसे तो आचार्य दीक्षा भी नहीं देते हैं। लघुग्रीव, ठैंगना, कांणा, पंगु पुरुष जिनदीक्षा नहीं ले सकता हैं। अष्टांग निमित्त–ज्ञानी आचार्य महाराज शरीर के गुण दोषों को पहिचानते हैं। ये शारीरिक गुण दोष आत्मा पर भारी प्रभाव डालते हैं। आप स्वयं समझ लेना। अलम्।

सुई के अग्र भाग पर जितना जल आता है उसमें तीनों लोकों के सम्पूर्ण त्रस जीवों से भी अधिक जल–कायिक जीव हैं। अर्थात् कर्म भूमियों में चातुर्मास में चाहे जितनी सम्मूर्छन त्रस-राशि उपज जाय उसमें जितने

त्रस जीव हैं या अन्यत्र धर्मा के ऊपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय हों तथा मध्य लोक के मानव या पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के शरीरों में जितने भी विकलत्रय जीव भरे होंय अथवा विकलत्रय शरीरों में भी पुनः जिनदृष्ट अनवस्था-क्रांत असंख्याते विकलत्रयान्तर हों चालीसवीं, पचासवीं कोटि पर जाकर पूर्ववर्ती त्रसों का काय ही तदाश्रित त्रसां-तरों का शरीर बन बैठेगा। यों अनवस्था टूट जायगी। इस दोष को तो हटाना ही है।

एवं चारों गतियों के पंचेन्द्रियों को भी मिला लिया जाय इन सब त्रसों से एक जल बिन्दु में असंख्यात गुणे जलकायिक जीव हैं। रथरेणु से भी छोटे एक निगोद शरीर में तो अनन्तानन्त एकेन्द्रिय जीव हैं। जो कि नि-गोद के अतिरिक्त सभी छह काय के असंख्यातासंख्यात जीवों तथा इनसे अनन्तगुणे सिद्धों से भी अनन्त गुणे हैं। अतीत कालके समयोंसे भी। उन सभी जीवों के कर्म नोकर्म विस्रसोपचय सब कुछ उसी रेणुस्थानमें निर्बाध ठहर रहा है "धन्या अवगाहशक्तिः अचिन्त्यप्रभावा"।

ये सब अपने शरीरों को स्वयं बनाते हैं। इन सब जीवों में शक्ति रूप से सिद्ध परमात्मत्व विद्यमान है। जीव स्वपुरुषार्थ से यदि मोक्ष प्राप्त कर लेता है फिर स्वशरीर बनाना तो सर्वथा तुच्छ कार्य है।

किसी मनुष्यके मूत्राशय में पथरी रोग हो जाता है। उप पथरीमें पृथ्वी कायिक एकेन्द्रिय जीव हैं मनुष्य काय में पूरा एक मनुष्य पञ्चेन्द्रिय जीव है मनुष्यके मांसमेंतथा रक्त में अनेक विकलत्रय और बादर निगोद जीव भरे हैं। तत्काल के मूत्र में कोई जीव नहीं है प्रासुक है। यदि सड़ जाय, विकारी हो जाय तो मूत्र या लार में भी जीव उपज जाते हैं ऐसे तो रोटी, दाल, पूरी, लड्डू, अमरूद, केला के सड़ जाने पर भी इनमें विकलत्रय हो जाते हैं। उदर रोगसे किसी २ के पेट में ही मल में सुई सदृश या बड़े भी कीड़े उपज जाते हैं। इसका हम क्या करें ?

द्रव्येषु पुरीषादिषु विचिकित्सा नैव करणीया'' (अमृतचन्द्र)

तभी तो सागारधर्मामृत में उगाल, मूत्र, श्लेष्म आदि को अनुपसेव्यों में गिनाया है, त्रसघात में नहीं। यों मूत्र प्रासुक होते हुये भी असेव्य है शिष्ट सम्प्रदाय में निंद्य है। अस्पृश्य है अशुद्ध है। शुद्ध्यर्थ अपना मूत्र भी बाहर पड़ गया तत्काल धो देने योग्य हैं। यों तो चढ़ाई जा चुकी सामग्री उच्छिष्ट भोजन (झूठिन) भङ्गी का बर्तन, मानवके लिये लहंगा फरिया, चूड़ियां, गजरे, स्त्रीके लिये कोट, अंगरखा, टोपी तथा खांड के बने कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा, आदि भी प्रासुक हैं किन्तु अनुपसेव्य हैं अतः त्याज्य हैं। तीव्र भाव हिंसा भी है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार की संस्कृत टीका में श्री प्रभाचन्द्र आचार्य ने भी मल मूत्र लार आदि को प्रासुक माना है। वृक्ष में वनस्पतिकायिक जीव है किसी २ वृक्ष में चार पांच गज लम्बी, चार पांच इंच चौड़ी, एक बटे आठ इंच मोटी पथरी, (गाभा-ग्रावा) बन बैठती है इसमें असंख्य पृथ्वी कायिक जीव हैं जैसे कि मिट्टी मिले गंदले पानी में पृथ्वीकायिक, जल कायिक दोनों जाति के जीव हैं। तद्वत् गाय शरीर में पंचेन्द्रिय स्त्री वेदी, गर्भज एक जीव है। उसके मांस तथा दुग्धाशय में असंख्य विकलत्रय हैं किन्तु दूध सर्वथा अचित्त है। इसी प्रकार सीप का मोती भी प्रासुक है। प्रासुकत्व और शुद्धता की व्याप्ति नहीं है "प्रगता असवो यस्मात्" दूर हो गये हैं प्राणी जिससे वह प्रासुक है प्रासुक होते हुये भी उगिलन, लार, भूंठा छोड़ दिया भोजन अशुद्ध है। प्रासुक नहीं होते हुये भी हाथ, करभ, (पौंचे से लेकर बाहरला छोटी अंगुली तक मांसल भाग) शुद्ध हैं हाथ के रक्त मांस चर्म में विकलत्रय जीव हैं तो भी हम अपने हाथों से प्रतिमा स्पर्श, मुनिदान, भोजन करते हैं। करभसे लोटा उंधकाकर पेशाबके हाथ धोलेते हैं। यह वस्तु स्थिति है घृणित पदार्थके प्रचारका भाव नहीं है।

जो जीवित शरीर का अवयव बन बैठे, वह सजीव है। वहि:केश, पके नख, यद्यपि मूल शरीरके अव-

यवपन से दूर हो गये हैं। अतः मूल जीव उनमें नहीं रहा है फिर भी अन्य विकलत्रयों के आधार होनेसे सजीव हैं, अशुद्ध हैं। दूध या मोती में यह चर्चा लागू नहीं होती है वृक्षका सूखा पत्ता, पकाफल, प्रासुक है। कोई २ वनस्पति प्रथम अवस्था में अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहती है फिर सप्रतिष्ठित हो जाती हैं। पुनः सुखा देने पर, तपा देने पर, प्रासुक हो ज ती है "सुक्कं पक्कं तत्त" हां त्रसशरीर वर्तमानमें कथमपि प्रासुक नहीं हो सकता है। त्रस शरीर का मांस भी पर्या-यान्तर धारण कर शुद्ध हो जाता है। विकलत्रय या पचे-न्द्रिय जीव मर कर उनका शरीर कालान्तर में शुद्ध पुद्गल बन सकता है। कायस्थिति का अवसर टाल दीजिये। खाये गये शुद्ध रोटी, दाल शाक, दही, घी चार या पांच घण्टेमें ये मांस बन जाते हैं यवनों या बिल्ली आदि द्वारा खाया गया मांस भी चार छः घण्टे में निर्जीव मल, मूत्र बन जाता है मरा वच्चा गाढ़ दिया जाता है थोड़े दिनों में मिट्टी हो जाता है सुनते हैं कि अंगूरों में रक्त का खाद् लगाया जाता है किन्तु द्राक्षा तो शुद्ध है। तत्कालीन पर्याय पर भक्ष्य, अभक्ष्य व्यवस्था अवलम्बित है। पहिली पिछली पर्यायों को न चितारो। मांस, टट्टी, पेशाब, चर्बी, हड्डी, गूथ सब खाद होकर दस दिन में तोरई, लौका, ककड़ी, खीरा बन जाते हैं। तोरई लौका खाया जाकर छः घण्टेमें

मांस हो जाता है।

अचौर्य, स्वस्त्री-सन्तोष, व्रतोंमें भी तत्काल की पर्याय का लक्ष्य रक्खो। हमारी चीजें जन्मान्तरों में दूसरोंकी हो जाती हैं उनको उठा लेनेमें चोरीका दोष लगेगा। तब हम अन्यकी वस्तुओंके स्वामी बन जाते हैं परिणीता स्त्री दूसरी पर्याय में बहन बन सकती है। मां बेटी भी जन्मान्तर में स्त्री बन सकती हैं। बाप बेटा बन जाता है यहां तक कि स्वयं आप अपना बेटा बन जाता है। भक्ष्य भोजन की गले से उतरते ही स्वपर के लिये अभक्ष्य अवस्था हो जाती है। मुख में रखते ही दूसरे के लिये अभक्ष्य पर्याय हो जाती है। शहर का सब मल, मूत्र, कीच, मांस, रक्त, सड़ी मोरिया बहकर म्यूनिस्पैलटी द्वारा निकटवर्त्ती खेतों में डाली जाती हैं। वे कुछ दिनों में सुन्दर सरस फल, शाक, पुष्प, अन्न आदि स्वांग-धर के व्रतियों या मुनियोंकी आहारदान सामग्री बन उठती है। सांभरकी झीलमें पड़गया कोई भी पदार्थ लवण बन जाता है। यों आचार शास्त्रके अनुसार वर्तमान पर्याय पर शुद्धि अशुद्धि व्यवस्था समझ ली जाय। यदि घृणा होय तो कुछ पूर्व की अवस्था अनुसार त्याग कर दो। यों आचार शास्त्र, स्वेन्द्रियज्ञान, सूर्य आलोक से प्रकाशित वर्तमान शुद्ध पदार्थ का भक्षण करना चाहिये वैद्यों ने तो मल को जीवनमूल मान रखा है।

"मलायत्तं हि जीवनं" (योगरत्नाकर)

"तित्थयरा तप्पयरा हलधर चक्काय वासुदेवाय,
पड़िवासुदेव भोमा आहारो णत्थिणीहारो"।

तीर्थङ्कर और उनके माता पिता तथा बलभद्र चक्रवर्ती नारायण, प्रतिनारायण, भोगभूमियां इनके आहार हैं नीहार (मलमूत्र) नहीं है। यह सिद्धान्तकी बात है। किन्तु वैद्यकों ने आधुनिक मानव के जीवितव्य में मल सद्भाव को कारण माना है। कुछ मल (विष्टा) मलाशय में रहना चाहिये। पूरा मल खिसक जाने पर जीवन संकटापन्न हो जाता है।

अत एव सूक्ष्मनिगोदिया अपर्याप्त से लेकर केवलज्ञानी तक सभी जीवों के ज्ञान, सुख, लाभ, बल, भोग आदिमें वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम या क्षय हो जाना आवश्यक बताया है।

"वीर्यायत्तं बलं पुंसां" (यो० र०) आज कल के पुरुषों का बल वीर्याधीन माना गया है- कोई विरोध की बात नहीं है। पुरुष के शरीर में धातु रूप वीर्य और स्त्री शरीरमें रम रहा शोणित सचित्त हैं किन्तु गर्भाशय में पहुंच गये शुक्र और शोणित अचित्त हैं, ऐसा सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक में योनि सूत्र की टीका में लिखा है। माता की गर्भ थैली में तो माता का पंचेन्द्रिय जीव और शुकके विकलत्रय विद्यमान हैं अतः सचित्त है। जीवित गर्भाशय में

पहुंचकर पृथक् हुये शुक्र शोणित दोनों झट अचित्त हो जाते होंगे पुनः उत्पद्यमान जीव करके अहरियमाण हो जाने पर सचित्त हो जाते हैं। तांबे के तारमें बिजली का करेण्ट अचित्त है। बटन दबा देने पर बल्ब में झट असंख्यात अग्निकाय के जीव उपज जाते हैं। दियासलाई अचित्त है रगड़ देने पर तत्काल अग्नि कायिक असंख्य जीव जन्म लेलेते हैं। बुझ जानेपर सब मर जाते हैं। सूखे पके प्रासुक का भी नहीं खाने में बड़ा इन्द्रिय-संयम पलता है।

"कामादि प्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः,
तच्च कर्मस्व हेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्य शुद्धितः"।

आत्मा के पुरुषार्थ और कर्मों की गति विचित्र है। कदाचित् वैराग्य है, और बहुभाग राग परिणति है। देवोंके समान निकट भव्य सम्यग्दृष्टि नारकियों के भी कभी २ ऐसी भावनाएं उपज जाती हैं कि कब मनुष्य जन्म धारण कर संयम पालन करूंगा ? श्रेणिकचर महापद्मभावी जीवके तो अनेक बार ऐसी भावनायें हो रही होंगी। सम्यग्दर्शन के साथ सम्वेग, निर्वेद गुण लग रहे हैं। सम्यक्त्वी भोगोंके समान दुःख वेदनाओंको भी कर्मफल जानकर उदासीनता के साथ भोगते हैं। आत्म-तत्वपर लक्ष्य पहुंच जाता है।

नारकियों का वैक्रियिक शरीर मात्र नरकायु वाले एक पंचेन्द्रिय जीव का आधार है अब शेषरीत्या अचित है

नरकों में खकार, पीब, चर्बी, मेद, चूहे, गधा, ऊंट कुत्ते का सड़ा मांस आदि सरीखा घिनामना पुद्गल भरा है, जिसमें कि इतनी दुर्गन्ध आती है यदि वह यहां मनुष्यक्षेत्र में डाल दिया जाय तो दो दो, चार चार, दशदश कोष के जीवों को मार डालेगा। तथा अन्य वहां नरकोंमें तपायी हुई कढ़ाई या उष्ण लोह से भरी हुई डेगें हैं।

तथा वैतरणी नदी में जो मलिन दुर्गन्ध द्रव बह रहा है ये सब अचित्त हैं इनमैं कोई बादर एकेन्द्रिय या विकलत्रय जीव नहीं हैं। नरकोंमें पंचेन्द्रिय जीव या एकेन्द्रियजीव ही हैं। नरकों में भेड़िया, बघेरा, कुत्ता, सर्प, बिच्छू, लटें, कांतर, कलीला, कौआ, उल्लू आदि भयंकर जीव पाये जाते हैं अथवा भाला लोहस्त्री, तलवार, बर्छी, घन कोल्हू चाकी, कीलकशय्या त्रिशूल आदि जीव या अस्त्र शस्त्र पाये जाते हैं। ये सब नारकियों के किये गये एकत्व (अपृथक्) विक्रिया के शरीर हैं। उनमें वैक्रियिक समुद्घात कर रहा केवल एक २ नारक पंचेन्द्रिय जीव हैं अन्य सभी प्रकारों से अचित्त हैं नारकियों की अकालमृत्यु नहीं है। पृथक् विक्रिया नहीं कर पाते हैं।

इसी प्रकार देवोंके क्षेत्रों में भी बढ़िया पृथ्वी सुगन्धद्रव्य, उत्तम जल, नीरोग वायु पर्वत, नदी, खेत, बाग, सरोवरों में मात्र एकेन्द्रिय जीव हैं या अचित्त पदार्थ हैं। देवों

के यहां भी एकेन्द्रिय या पंचेन्द्रिय जीव ही पाये जाते हैं। देवता अपने शरीर से भिन्नरूप से अश्व सिंह हाथी भ्रमर महल मंडप कूप बावड़ी उपवन नदी सरोवर पर्वत आदि स्वांगों की पृथक् विक्रिया कर लेते हैं।

देव अपृथक् विक्रिया भी करते हैं। उन सभी वैक्रियिक पदार्थों में समुद्घात नामक प्रयत्न से देवों की आत्मा के प्रदेश भरे हुये हैं। अन्य सभी प्रकारों से वे अचित्त हैं। देव नारकियों का मांस स्थानीय पदार्थ अचित्त है किन्तु अनुपसेव्य है, नारकी परस्पर में कषायवश वैक्रियिक जीवों का अन्योन्य भक्षण कर जाते हैं उस में जीव-वध सर्वथा नहीं होता है पीड़ित को दुःख होता है। परन्तु घातक को महती संकल्पजा त्रसहिंसा का तीव्र पाप चढ़ बैठता है वध्य को रौद्रध्यान से।

ये सब सचित्त अचित्त की व्यवस्था जो गोम्मटसार त्रिलोकसार में बताई है उसका उद्देश्य जीवों को पहिचान कर उनकी रक्षा करते रहना है। हम लोगों के प्रमादवश भारी हिंसा हो जाती है, एक शौकीन लड़का साबुन लगा २ कर गरम पानी से नहा रहा है। साबुन से कपड़े धो रहा है। इस कृत्य से वह शौकीन जीव करोड़ों त्रस जीवों को मार रहा है। गामों में खेत या कच्ची छत अथवा रेत वाली भूमिमें पटा रखकर स्नान करते तो यह हिंसा अत्यल्प

हो सकती है किन्तु शहर की गन्दी सड़ी नालियोंमें असंख्य त्रस जीव बहरहे हैं उसमें उष्ण जल तीक्ष्ण क्षार साबुन के आते ही लाखों जीव तत्काल मर जाते हैं। जैसे कि तेजाब डालने से। इसी प्रकार सकरामन को रेत में या सूखे खेतमें डाला जाय तो अच्छा है। यदि मोरियोंमें बहा दिया जाय तो असंख्य जीव उपज कर मरजावेंगे। मोरी में सड़ रहे एक चावल से पचास हजार दृश्य लटें बन जाती हैं। अदृश्य त्रसों की गणना कठिन है यों घुन और पई खटमल जूंआ आदि को भी योग्य रक्षित अमरण स्थान में क्षेपना चाहिये।

एक बात यह भी समझ लेने की है कि अनन्तानुबन्धी या सम्यक्त्वके संस्कार समान मिथ्यात्व का भी संस्कार बहुत काल तक प्रवर्त्तता है। गृहस्थ पुरुष जैसे उत्तरोत्तर सन्तानों द्वारा लाखों करोड़ों वर्षों तक जीवित रहना चाहता है। उसी प्रकार बैल, घोड़ा, कुत्ता, ततैया, मकड़ी, चना, गेहूं, आदि पर्यायें भी चाहे अनचाहे उत्तरवर्ती पर्याय सन्तानरूप से चिर काल तक स्थिर बनी रहती हैं। यों ही जीव के सद्गुण, असद्गुण या स्वभाव विभाव पर्यायें संस्कार रूप से अनेक वर्षों तक धाराप्रवाह चलती रहती हैं कारणों द्वारा यथोचित उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी होते रहते हैं कालाणुओं की स्वकीय वर्तना द्वारा प्रतिक्षण उत्पा-

दादि करते रहने की टेव ही पड़ गई है। एक इतर निगोदिया जीवके ढाई पुद्गल परिवर्तन काल तक अनन्त भवों में मिथ्यात्व का उदय बना हुआ है। यहां पूर्व मिथ्यात्वोदय के संस्कार भी उत्तरवर्ती अगृहीत मिथ्यादर्शनों में पहुंच रहे हैं।

जैसे कि एक रूमाल पर एक घण्टे में सौ बार इत्र छिड़का जाय तो पूर्ववर्ती सुगन्धियां उत्तरवर्ती सुगन्धियों में अपनी वासनायें जमाती रहती हैं। जल प्रवाहके समान परली ओर फेंकते रहनेकी तलब जो ठहरी। प्रत्येक द्रव्य में विद्यमान हो रहे अस्तित्व गुण की छाया से सभी अनन्त गुण त्रिकाल अस्तिरूप हैं। द्रव्यत्व गुण के तादात्म्य से सभी गुणोंका द्रवण होरहा है वक्ताका प्रभाव श्रोताओंपर और श्रोताओं की क्रांति वक्ता पर पड़ती है। यों जैन सिद्धान्त में छायावाद स्वीकार किया गया है। पूजन करते समय फटी मैली धोती, दुपट्टा, बुरीसामग्री, टूटे बर्तन, घिनामना स्थान ये परिणामों पर तत्काल अशुभ आक्रमण करते हैं। बढ़िया सुन्दर उपकरण विशेष शुद्धि करते हैं। पापसे शुभ राग अच्छा है यही क्रम रसोई घर, विवाह स्थल, दुकान, बाजार में भी लगा लो। जगत् में प्रभाव्य प्रभावक की सनक सर्वत्र छा रही है।

एक पर्याय या गुण दूसरे पर्याय या गुणस्वरूप नहीं

हो जाता है किन्तु गुण या पर्याय की दूसरोंपर छाया पड़ती है। और यों अविभागप्रतिच्छेद घट, बढ़ जाते हैं जैसे कि अहिंसा और अचौर्य के साथ यदि ब्रह्मचर्य है तो वह अकेले ब्रह्मचर्य से बहुत बढ़ा हुआ है। खदिरसार भील की कथा पढ़ लो। एक व्यसन का त्याग और सातों व्यसनोंके त्याग में भी ये ही चर्चा लगा लेना। एक मोती यदि पांच रुपये का है तो सदृश दो मोती बीस रुपये के हैं वैसे ही चार मोती सौ रुपये के हो जाते हैं। एक घोड़े से सदृश दो घोड़ों का मूल्य चौगुना होता है यदि वैसे ही बत्तीस घोड़े हों तो उनका मूल्य करोड़ों रुपये हो जाता है। इसी तरह से आत्मामें निवस रहे अनेक दोषों या गुणों की परिणतियों में परस्पर प्रभाव डालना रूप क्रान्तिप्रसार से पुण्य पाप बन्ध में तारतम्य हो जाता है। प्रायः सभी जीव पुद्गलोंमें प्रभाव लेने देने की सहज टेव पड़ी हुई है। जाड़े में मकराने की पटिया पर पांव धर दो वह आपकी गर्मी को चाटेगी बदले में आपको शीत दे देगी। तभी तो हम स्पर्शरोगी, दरिद्र, कुवचनी, मूर्ख, सर्प, कसाई, व्यभिचारी से दूर रहते हैं और सज्जन, धर्मात्मा, विद्वान्, सदाचारी, त्यागी, जितेन्द्रिय भगवान् आदि का सत्संग करना चाहते हैं।

कारण कोई कल्पित नहीं या असत् नहीं, किंतु वस्तु-

भूत है। जब कि गुण या दोषों में दूसरे गुण, दोषों के परस्पर प्रभावप्रसार से अविभागप्रतिच्छेद (शक्ति अंश) बढ़ गये हैं। भयस्थान पर जाते हुये एक की अपेक्षा दो और दो की अपेक्षा शस्त्रधारी चार को भय कम लगता है। प्रत्येक की आत्मा में निर्भयता बढ़ गई है। अनुभव कर लो। अन्योन्य छायावाद डट रहा है। नौकर के साथ सेठ जी आये और सेठजी के साथ नौकर आया इन दो वाक्योंमें तारतम्य है। बासी तोरई की ताजी तरकारी और ताजी तोरई की बासी तरकारी के स्वाद में इस ही कारण अन्तर पड़ गया है। दाल के साथ रोटी और रोटी के साथ दाल खानेमें भी कुछ विशेष रहस्य है। इस विषय पर बहुत नहीं कहना। विद्वानों के लिये संकेत मात्र पर्याप्त है। यों हम अचित्त घृणित लार, मूत्र, चाण्डालस्पृष्टभाण्ड छत वस्त्र आदिको सचित्त जल मिट्टी, अग्नि, वायु से शुद्ध करलेते हैं। यहां भी प्रमाणत्व प्रमेयत्वके समान कारणत्व का यत्व घुस रहा है। यों अचित्तों को सचित्तों द्वारा बहु एकेन्द्रिय घात करते हुये पवित्र करे जाओ।

अष्टसहस्रीमें एक कारण से जितने कार्य होते हैं उतने स्वभावभेद उस कारण में वस्तुभूत मानो इस मन्तव्य पर बहुत बल दिया है। दाढ़ोंमें हलुआ, खड़ी, पेड़ा, पूरी, लड्डू, चने, सुपारी, खानेके शक्त्यंश न्यारे २ हैं। हलुआ खाते

यदि सुपारी आ जाय तो आप चौंक पड़ेंगे क्योंकि दांतोंमें थोड़ी शक्ति लगा रखी थी धोखा दिया गया। छः महीनेमें एक इंच बाल बढ़ते हैं वहां एक इंच में असंख्याती उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालके समसयों से भी अधिक प्रदेश हैं। छुरा हटा कर पुनः शीघ्र वहीं छुरा फिराने में जितना काल लगता है उतने समय में कटा हुआ बाल असंख्यात प्रदेशों भर ऊपर उभर आता है। मृदंग पर धम् के पश्चात् किट् बजाने में असंख्यात समय लग जाते हैं। इतने कालमें इन्द्र पांचों मेरुओं की वन्दना कर आ जाता है। श्वासके अठारहवें भागमें भी आयुबंध योग्य आठ ही त्रिभाग क्या करोड़ों अरबों क्या, ठीक जघन्य असंख्यात से बढ़कर भी त्रिभाग पड़ सकते हैं। जघन्यपरीतअसंख्यात को बिरलन, देय, राशि रखकर आवली बनाई जाती है। लब्ध्यपर्य्याप्तक की आयु आवलि से अधिक है। जैसे दस हजार संख्या में सौवें भाग दो और दसवें भाग चार, पांचवें भाग पांच और त्रिभाग आठ पड़ जाते हैं।

इसी प्रकार आवलि में असंख्यातवें भाग जब जघन्य परीतासंख्य प्रमाण हैं तो त्रिभाग (तीसरे भाग) तो इन से भी अधिक पड़ जाते हैं। आयुष्य कर्म का बन्ध कर्मभूमि के मनुष्य तिर्यञ्चोंके आदिम आठ त्रिभागोंमें ही अन्तर्मुहूर्त तक पड़ेगा। अन्यों में नहीं। यदि आठ अपकर्षोंमें परभव

की आयु न बन्धे तो असंक्षेपाद्धा में अवश्य बन्ध जायगी देव और नारकियों में अन्त के छः मासों तथा भोगभूमियों के अन्तिम नौ मासों में आठ त्रिभाग आयुबंन्ध योग्य हैं। पहिले पिछले त्रिभाग अयोग्य हैं। जैन सिद्धान्तोंमें अनेक सूक्ष्म तत्व बताये गये हैं। परिशीलन करने वाला चाहिये। दश जन्मों तक वर्तमान उपलब्ध ही जैन वाङ्मय का अध्ययन करते रहो, अनेक नव्य भव्य प्रमेय रत्न हस्तगत होते रहेंगे। स्वाध्याय में अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

बितण्डा या कुचोद्य करनेमें नहीं। जो कुछ कहा गया है या कहा जायगा वह आगमोक्त ही है। हमारी गांठ का कुछ नहीं है आचार्यों पर उत्तरदायित्व है। तत्वों का ज्ञान ही उपादेय है। जगत् में ज्ञान सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है। एकेन्द्रिय विकलत्रयों का छोटा सा ज्ञान भी महत्वपूर्ण कार्यों को करता है। हित प्राप्ति और अहित परिहार करना ज्ञान का ही कार्य है। "हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्"। (माणिक्यनन्दी)

इष्टप्राप्ति, अनिष्टपरिहार करने में मन को मत घसीटो हां विचारक बड़े ज्ञान (श्रुत) संज्ञियों के होते हैं। किन्तु छोटे श्रुतज्ञान सभी एकेन्द्रिय विकत्रयों के हो जाते हैं। और सबसे बड़ा केवलज्ञान महाराज तो संज्ञी, असंज्ञी दोनों के नहीं होता है किन्तु उभयव्यपदेशरहित परमेष्ठी के

होता है। वहां विचार का कुछ काम ही नहीं है। अवधि और मन:पर्यय में भी विचारणा नहीं है। मन इन्द्रिय का व्यापार भी नहीं है। सूर्य प्रकाश या मेघवत् प्रवृत्ति है। विचार करना परोक्ष ज्ञान है (प्रमेय कमल मार्तण्ड तर्क प्रमाण)। (प्रमेयरत्नमाला)

आजकल के कतिपय जैन कुछ छोटे मोटे ग्रन्थों का अक्रम स्वाध्याय कर अपने को भारी विद्वान् समझ बैठते हैं। किसी २ बात का तीव्र हठ करते रहते हैं। छोटे बड़े सभी श्रोता स्वयम्बुद्ध बन रहे हैं। भ्रातृवर ? गुरु के बिना ज्ञान त्रुटित रहता है। यह ज्ञानार्णव में मयूर का दृष्टान्त देकर समझाया है कि मोर गुरु के बिना नृत्यकला सीखा है, अच्छा नाचता है, किन्तु गुरुशिक्षा के बिना नाचने में उसका गुह्य अंग दीखता रहता है। अतः ज्ञान, ध्यान, आचरण क्रियाओं में गुरु की शिक्षा आवश्यक है। तीर्थङ्कर वत् जन्म से ही प्रत्येकबुद्ध उपजने की उनकी मान्यता शिष्ट सम्प्रदायमें आदरणीय नहीं है गर्हणीय है। जैनों में निगुरापन फैलता जाता है। तभी अनेक मार्ग बनते चले जा रहे हैं। निज को स्वयम्भू माने हुये अनेक मानव या आधुनिक छात्र अपने शिक्षक गुरु का नाम लेने में या गुरु का गुणकीर्तन करने में अपनी अप्रतिष्ठा (तौहीन) समझते हैं। यह दोष बहुत बुरा हैं। जैनातिरिक्त सम्प्रदायों में

यहां तक कि गाने बजाने वालों या अखाडे के छोकरों में भी गुरुओं का आदर किया जाता है। भले ही गुरु गुड़ और कोई रूच, मानी चेला शक्कर हो जाय तो भी गुरु ने भावपूर्ण मनोयोग से शिष्य को संस्कृत किया है वह उपकार छोटा नहीं है। माता पिता गुरुसे ही अभिमान करना कृतज्ञता नहीं। कृतघ्नता है।

कोई भाई गाय के मांस में गाय सारिखे और भैंस के मांस में भैंस सदृश विकलत्रय जीव मानते हैं यह बात जंचती नहीं, कारण कि भैंस गाय तो गर्भज ही हैं उनके मांस रक्तस्थ जीवों को तत्सदृश कहना असमञ्जस है। यों तो मनुष्य के चर्बी, मेद में भी मनुष्य समान विकलत्रय मानोगे तब सिद्धान्त से विरोध आवेगा, क्योंकि मनुष्य तो संज्ञी ही होते हैं। कर्मभूमि, भोगभूमि के या म्लेच्छ नर तो गर्भज ही होते हैं। हां सम्मूर्छन अपर्याप्त मनुष्य तो कर्मभूमि की स्त्रियों के गुप्ताङ्गोंमें बाहर चुपटे रहते हैं। तीसरी जाति के मर्त्य हैं ही नहीं। अतः त्रस शरीरों में तत्समान विकलत्रयों की मान्यता सिद्धान्त और युक्तियों की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती है। यों बादरायण तुल्यता मानते रहने में कोई तत्व नहीं। कोई इनके मर्यादातिक्रान्त दूधमें भी तज्जातीय जीवों की कल्पना कर लेते हैं वह किसी प्राचीन शास्त्र में देखी नहीं।

कोई वैज्ञानिक वृक्ष बेलोंमें पांचों इन्द्रियां मानते हैं। वैशेषिक तो मन भी मानते हैं। यह मानना असत्य है कि कोई पेड़ या वल्ली ठीक स्थान देख कर आगे सरकती है वृक्ष कीड़ोंको पकड़ते हैं, मनसे विचारते हैं छुई मुई छूते मुरझा जाती है। जड़, धन या खात की ओर जाती हैं ये सब एकेन्द्रिय की या पुद्गल-कृत परिणतियां हैं डेल अधःपतन शील है अग्नि ऊर्ध्वगमनस्वभाव है। इस में आंख मन की आवश्यकता नहीं। वृक्ष बेलोंमें मात्र एक स्पर्शन इन्द्रिय है। कोई डाक्टर दही में जीव मानते हैं। दही जीवों के बिना नहीं जम सकती है यह कुयुक्ति है। कत्था, वरफ, साबुन, बक्खर भी जम जाते हैं। दूध, दही में हंस द्वारा पृथक् करने योग्य चैंथड़े से होते हैं उनको जीव मान लेना अनुचित है। रक्त, मांस, नारंगरस, चर्म, कफ, फलरस इनमें भी चैंथरा होते हैं रेशों को जीव न माना, यों दही शुद्ध है अचित्त है। वृक्षों, पत्तों, तृणों में भी स्नायुयें हैं। वे त्रस जीव नहीं हैं।

कोई आग्रही श्रोता किसी देश काल में पड़ गई रूढ़ि को छोड़ते नहीं हैं चाहे वे रूढ़ियां इस युग में धर्म की क्षति कर देवें। यों जैनों में बाहर से आई कतिपय मिथ्या रूढ़ियां पनप गई हैं। इन हठों ने श्री महावीर स्वामी के ठोस, उदार, स्याद्वादाङ्क शासन को छिपा दिया

है। जैसे कि कोई श्रोता ज्ञान में प्रतिबिम्ब पड़ जाना मान बैठे हैं कि तीनों काल के पदार्थों का केवलज्ञान में आकार (तसवीर) पड़ जाता है। भला इस अज्ञानका भी कोई पार है जब ? भूत भावी पदार्थ हैं ही नहीं तो ज्ञानमें प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है ? विद्यमान मूर्त का मूर्त में ही बिम्ब पड़ता है, अमूर्त में नहीं। जैन न्याय-शास्त्रों में इस बौद्धों के साकार—वाद का बहुत खण्डन किया है। "साकारं ज्ञानं निराकारं दर्शनं" यहां आकार का अर्थ ज्ञेय का विकल्पनात्मक उल्लेख करके समझना समझाना है प्रतिबिम्ब पड़ जाना नहीं। प्रतिबिम्ब या छाया तो पुद्गल की पर्याय हैं।

आकारोर्थविकल्पःस्यादर्थः स्वपरगोचरः,
सोपयोगो विकल्पोवा ज्ञानस्यैतद्धि लक्षणम्।
नाकारः स्यादनाकारो वस्तुनोनिर्विकल्पता,
शेषानन्तगुणानां तल्लक्षणं ज्ञानमन्तरा।

(पंचाध्यायी)

इसी प्रकार जिनपूजन, स्वाध्याय, तीर्थयात्रा, ध्यान करने में भी कोई आलसी कह देते हैं कि भाई कर्मोदय होगा तो पूजन, ध्यान करलेंगे। भला क्षायिक—सम्यक्त्व, महाव्रत, उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी पर चढ़ने के भी क्या कोई कर्म नियत हैं ? एक सौ अड़तालीस कर्मों में

से बताइये ? । मनोगढ़न्त बातें अच्छी नहीं ।

क्षायोपशमिक भावों में अत्यल्प देशघाती का उदय समझ लो, पारिणामिक भावों में तो कोई कर्मोदय नहीं है। कर्मोंकी मात्र उदय अवस्थासे हुये कार्योंको कर्मजन्य मानो। आत्मा के घोर प्रयत्न करने पर हुई कर्मों की क्षयोपशम, उपशम, क्षय दशाओं से उपज गये भाव तो महान् पुरुषार्थ हैं इनको कर्मों से हुये नहीं समझ बैठना । प्रत्युत कर्म इन के विघातक हैं । प्रतिबन्धक या विध्वन्सक को कारक नहीं मानना चाहिये । इत्यादि । कतिपय बाह्य धार्मिकक्रिया-ओं परभी क्वचिद् कषायें तन जाती हैं । कोई स्वज्ञेयातिरिक्त को सुनना भी नहीं चाहते हैं प्रामाणिक शास्त्रों को दिखा दो तो भी अपना आग्रह नहीं छोड़ते हैं । इनका भगवान् बेली है । जिनः पायात् ।

जिज्ञासु भ्रातः ! जिस प्रकार ज्ञान का अव्यवहित फल अज्ञान की निवृत्ति हो जाना है और हेय का हान करना उपादेय का ग्रहण कर लेना तथा उपेक्षणीय में राग द्वेष न करना ये आनुषङ्गिक फल हैं । उसी प्रकार मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का त्याग कर देना, सप्तव्यसनों की आखड़ी, आठ मूलगुणों का धारण, देवदर्शन, दया, जिनपूजन, मुनिदान, प्रतिष्ठा करना, तीर्थयात्रा करना, जाप्यदेना, स्वाध्याय, अनुप्रेक्षा–चिन्तन, धर्म्यध्यान,

व्रतों को धारना, पांच समिति पालना, दीक्षा, केशलोच, उपवास, कायक्लेश, कषायनिग्रह, इन्द्रियदमन, गुप्तियां, उत्तम क्षमा, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, प्रायश्चित्त, प्रभावना, वात्सल्य, परोपकार, कृतज्ञता, परीषहजय, शान्ति, उपेक्षा आदि धार्मिक आचरणों का प्रधान फल भी कर्मोंका संवर हो जाना और संचित कर्मों की निर्जरा होना है। जितना निवृत्ति अंश है उससे दुष्कर्मों का सम्वर होगा तथा जितना योगनिरोध या इच्छानिरोध भाग है उस तपःके द्वारा कर्मों की निर्जरा होगी।

हां प्रवृत्ति अंश से पुण्यास्रव हो जाता है वह गौणफल है। लेश्या से थोड़ा पापास्रव होगा भी तो इसमें स्थिति और अनुभाग अत्यल्प, नगण्य पड़ेंगे। तभी तो सम्यग्दर्शन के अभिमुख हो रहे सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व की उत्पत्ति, श्रावक, मुनि अवस्था, उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी आदि दश स्थानोंमें असंख्यात गुणी निर्जरा हो कर शीघ्र ही कर्मों का क्षय हो जाता है। डेढ़ गुण--हानि प्रमाण अनन्तानन्त संचित कर्म क्या यों ही क्रीड़ा मात्र में कट जायेंगे? कभी नहीं। इसके लिये मुनि को भारी पुरुषार्थ करना पड़ता है! इन गुणस्थानों में वर्त रहे धर्म्यध्यान शुक्ल ध्यानों करके नितान्त कर्मों का सम्वर और निर्जरा होते हैं।

देखिये सातिशय मिथ्यादृष्टि के अपूर्वकरण अवस्था में अनन्तानन्त कर्मों की निर्जरा हो जाती है। फिर अनन्तानन्तको दस स्थानोंपर असंख्यात गुणा करनेपर सर्वसंचित द्रव्य कर्म प्रतिक्षण झड़ कर क्षय को प्राप्त हो जाता है। यों मुमुक्षु जीवका चरमलक्ष्य मुक्ति–लाभ कर लेना धर्म-सेवन से बन जाता है।

सूर्यकी तो मात्र बारह हजार किरणें हैं किन्तु धर्म की असंख्याती किरणें हैं। जो कि आत्मस्वरूप की प्रकाशक हैं। मुक्त के अरहन्त आदि आठ देवता यहां ही छूट जाते हैं परन्तु प्रकाश्य प्रकाशक रूप आत्म–स्वरूप नौवां धर्म देवता अनन्त काल तक स्थिर रहेगा।

आजकल इस निकृष्टकाल में अनेक मुनि और श्रावक धर्म-पालन कर रहे हैं वे केवल स्वर्गों में ही जायेंगे। पञ्चम काल के अन्त में तीन वर्ष साढे आठ महीना शेष रहनेपर तबभी मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका पाये जायेंगे। ये चारों भव्यजीव विचारे छठे पांचवें गुणस्थानवाले भाव-लिंगी हैं तो भी प्रथम स्वर्ग में ही जायेंगे। वहां के राग-पूर्ण ठाट नाचना, गाना, स्नानकरना, देवांगनाओंके साथ स्पर्श आदि प्रवीचार, अनेक वन समुद्र द्वीपोंमें सैर करना आदि चेष्टाओं में असंख्याते वर्षों को पूरा कर देंगे।

हां सम्यग्दृष्टि देव तो बड़ी भक्ति से जिनपूजन भी

करते हैं। गाने, बजाने, नृत्य करने की परिपूर्ण कलाओं का अभिनय करते हैं। इसी लिये तो प्रत्येक विमान में अकृत्रिम चैत्यालय हैं। प्रत्येक मन्दिर में १०८ वेदिकायें हैं। उनमें पांच सौ धनुष की मूलनायक रत्नमय प्रतिमा जी विराजमान हैं। प्रत्येक सूर्य, चन्द्रमा, ताराओं में भी एक एक जिन-मन्दिर अवश्य है। यों असंख्याते अनादि सिद्ध जिनमन्दिर हैं। देवों के धर्मआराधना में रागभाव अधिक हैं।

वहां जिनालयोंमें गायन, वादित्र, नृत्य, पूजन, प्रक्षाल जाप्य, धूप, दीपक आदि के विशाल परिकर हैं। तदनुसार यहां भी मन्दिरजी को सजाने के लिये बढ़िया उपकरण, मुकुट, आभूषण, सुन्दर वस्त्र, चंदोआ, आसा, परदा, छत्र चमर, मालायें, मंजीरा, ढोलक, लकड़ीके रथ, हाथी, घोड़े पट, पटा, चौकी, पथावरे आदि परिच्छद हैं। ये सब शुभ राग हैं। राग ही से राग मिटता है। ठण्डा लोहा गरम को काटता है। विष विषको मार देता है। अशुभ से शुभ अच्छा है। चरम लक्ष्य शुद्धता सर्वोपरि है। अकृत्रिम चैत्यालयों में बड़े ठाट लग रहे हैं। नदीमुख और समुद्र सङ्गम के तोरण द्वारों पर ऊपर या नदी-पात गिरिगृहों पर सिंहासनोंमें अथवा चैत्य वृक्षोंके नीचे जो प्रतिमा विराज-मान हैं वहां प्रातिहार्य मङ्गल-द्रव्य, मालायें, धूप—घट,

देवच्छन्द, घण्टाजाल, स्तूपादि लम्बा चौड़ा व्यूह नहीं है स्वल्प है एक प्रतिमा जी विराजमान है। एकान्त प्रिय उदासीन देवों या ढाई द्वीप के ऋद्धिधारी मुनियों का ऐसे एकान्त धर्मस्थलों में अच्छा मन लगता है। चलचित्त विनोदियों का नहीं।

बात यह है कि आत्मा के चारित्रगुण की क्रोध अरति भय जुगुप्सा शोक द्वेष रौद्र वेद सुदुर्भक्तिमय सङ्कर विभाव रली मिली परिणतियां हो रही हैं। आज कल के धर्म-सेवन तीव्र राग-द्वेषकी कीचड़से सने हुये हैं किसी का धर्म सेवन बड़ा महंगा पड़ता है। ऐसे धर्म को धर्म शब्द से कहनाभी खटकता है। वस्तुतः शुद्धतापूर्ण धर्म तो कर्मों के सम्बर निर्जरा का हेतु है। लौकिक सुखाभासों को धर्म का फल कहना ही जिनधर्म का अनादर करना है। धर्म का पूर्वरूप या आभास कह लो।

भावपाहुड़ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने बहुत अच्छा प्रतिपादन किया है—

पूयादि सुवय सहिये पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो॥
सद्दहदिय पत्तेदिय रोचेदिय तह पुणो त्रिकासे हि।
पुण्णं भोय णिमित्तं, नहि सो कम्मक्खय णिमित्तं॥

इन दोनों गाथाओं का अभिप्राय स्पष्ट है कि पुण्य

तो भोग का अव्यभिचारी कारण है कर्म-क्षय का निमित्त नहीं ।

इस अधम पञ्चम काल में जैनधर्म पालना बड़ा कठिन हो गया है । राग द्वेष की अत्यन्त न्यूनता हो जाने पर ये महावीर का धर्म पलता है । आधुनिक मनुष्यों में ब्राह्मण तो ईश्वरकर्तृत्व पर श्रद्धा, वेदोंपर अटल रुचि तथा अहिंसा ब्रह्मचर्य अपरिग्रह का पूर्णतया न पाल सकना, देव-द्रव्य खा लेना, शक्ति की पूजा आदि कारणों के वश वे आर्हत धर्मसेवन से दूर हट गये । कतिपय तो विरोधी बन बैठे । क्षत्रिय भी इन्द्रियलोलुपता हिंसा अभक्ष्यभक्षण रात्रि-भोजन आदि प्रयोजनों के वश होकर वीतराग धर्म को स्वेच्छा प्रवृत्ति का बाधक समझने लगे । साथ ही उनको इन्द्रिय-विषय पोषक धर्मशास्त्र मिल गये तो जिनशासन को भारी बन्धन सांकल मानने लगे । म्लेच्छ या शूद्र विचारे अपनी अधम आजीविका सन्तानक्रमागत अना-चारोंसे जकड़े रहना त्याग करनेकी अशक्ति आदि कारणों के अधीन होकर उच्च धर्म की ओर दृष्टि भी नहीं डालते हैं । बहुभाग वैश्यों की भी धर्मोदासीनता के ये ही कारण हैं । शेष रहे थोड़े से वैश्य जो आजकल दिखाऊ जैनधर्म को पालते दीख रहे हैं । उनकी सैकड़ों पीढीसे वाणिज्य करने की आजीविका चली आ रही है ।

प्रायः वाणिज्य में लोभ अधिक होता है। लोभ के साथ माया तो नितान्त लगी ही रहती है। तथा धन मान को भी बढ़ाता है। धनोपार्जन के आगे पीछे क्रोध की चासनी चुपकी रहती है यों आजकल के कषायधारी जैन वैश्यों में महावीर स्वामी का वीतरागशासन पनपने नहीं पाता है। कषायोंसे प्रकृति निष्ठुर बन जाती है। अन्यथा क्या हेतु है कि इतनी सभायें, संस्थायें, विद्यालय, गुरुकुल छात्रालय, पाठशालायें, उपदेशक, मासिक-पाक्षिक-साप्ताहिक पत्र संघ, त्यागि, पण्डितवर्ग परिषद् आदि होते हुए भी इस परमपवित्र सार्वभद्र जिनशासन की यथोचित उन्नति नहीं हो पाती है। श्री समन्तभद्र आचार्य ने ठीक कहा है कि—

कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा,
श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनानयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मी—
प्रभुत्वशक्तेः अपवादहेतुः॥

हां थोड़ेसे अंगुलियोंपर गिनने योग्य मन्दकषायवान् जीव यदि समन्त-पवित्र आर्हत धर्मको पाल रहे हैं। त्रिलोकीधर्म का इनसे क्या पूरा पड़े। तभी तो गोम्मटसार में सम्यग्दृष्टि मानवों की संख्या अत्यल्प कही है। करोड़ों में एक दो।

जब कि आजकल इस कलिकालमें ब्राह्मणों के समान जैनों में कोई धार्मिक-वर्ग नियत नहीं है। तथा कोई ईसाई या यवनों के समान आज्ञावश-वर्तक गृहस्थाचार्य भी नहीं है। ऐसी दशा में आधुनिक जैन विचारे करें भी क्या ?। अस्तु-उद्योग करते जाओ संस्थायें भी कार्य करती रहें परिश्रम फल भी मीठा निकलेगा ही। आर्य-समाजियों की नकल करना छोड़ो प्राचीन गृहस्थाचार्य या गुरुओंकी परिपाटीको पकड़ो। जैन-धर्म इतना निर्बल नहीं है जो अपनी प्रभावना करने में अन्यमतियों की सरणि को अपनावे। दूसरे हमारा ही अनुकरण क्यों न करें। निर्बलता को हटाकर आत्म-गौरव स्थापन करो। पूज्य जैनाचार्यों के बनाये ग्रन्थ न्याय, व्याकरण, साहित्य आदिके अध्ययन अध्यापन को बढाओ, परत्वको निकाल बाहर करो।

धर्म-तत्व बड़ा दुरूह है। जैनों के छोटे छोटे मतभेदों को सहन करो प्रमोद-पूर्वक दूर भी करो, ग्लानि करने की टेव छोड़ो, जगत् परिवर्तनशील है इन पन्द्रह वर्षों में अथाह विपरिणाम हुये हैं।

अध्येतः ! विक्रम सम्वत् के यदि तीन भाग हो चुके माने जांय तो प्रथम भागमें यहां ब्राह्मणों का राज्य रहा। अब भी महन्त, गोस्वामी बनारस के पण्डितों का अबा-

ह्मणों से घृणाभाव, मद्रास प्रान्त में ब्राह्मणों के मार्ग से अब्राह्मणों की गलियां न्यारीं न्यारीं, पण्डाओंकी चण्ड-प्रकृति, यों छाया दीख रही है। द्वितीय भागमें क्षत्रियों का राज्य रहा वे ईश्वरांश माने गये। अब भी खण्डरूप से शासक राजगण यहां वहां फैले हुये हैं। तृतीय चरण में वैश्यों की प्रभुता रही अधिकारीवर्ग, राजा, सम्राट् भी वैश्यत्व में रङ्ग गये। धनकी प्रतिष्ठा सातिशय बढ़ गयी। धनपति-जन सर्वेसर्वा बन गये। अब चतुर्थ वर्णका राज्य होता दीखता है। श्रीवीर प्रभु के जैन-धर्म की प्रभावना अतीव दुर्लभ होती जा रही है। "जयतु त्रिलोकी-हितो जिनधर्मः" चाहें तो चारों वर्ण क्या सभी म्लेच्छ, पशु, पक्षी भी जैनधर्म को पाल सकते हैं।

बन्धुवर्ग! धर्म के समान पाप भी अनादि है पौने दो घड़ी बड़ा भैया है। वसुराजाकी कथा आपने पढ़ी होगी। श्री महावीर स्वामी के प्रथम से ही भारतवर्ष में मांस का बहुत प्रचार था। पीछे भी वैदिक कर्म-काण्डियों ने अश्वमेध, अजमेध आदि यज्ञों द्वारा तथा शाक्तजन, महायान सम्प्रदायों द्वारा मांस-भक्षण धार्मिक क्रियाओं का बहाना लेकर अत्यधिक चालू हो गया था। अब तो सैकड़ों वर्षोंसे राजा प्रजा बहुभाग इन्द्रियलोलुप सभी मांस मद्य, मधु, मैथुन, रात्रि भोजन, बहुघात, त्रसघात, भक्ष-

हिंसा आदि पापोंमें आनखशिख डूब रहे हैं। पहिले देशों में छोटे छोटे प्रांतिक राजा थे दिन रात परस्पर लड़ाई में ही निमग्न रहते थे। युद्धों में नवीन चुने हुये युवाओं की मृत्युयें बहुत होती थीं। सती दाह-प्रथा चालू थी। ऐसे वध, हाय, हत्या, के युगों में अहिंसामय शान्ति-प्रिय जैन-धर्म का टिकना नितान्त दुर्लभ हो गया था। जब तक विरोधिनी हिंसा करते रहने का प्राबल्य रहा स्वरक्षार्थ-विरोधियों से लड़ते हुये भी धर्म-प्रभावना बनी रही। जैनोंमें बड़े बड़े योद्धा हो गये हैं। उन्हींकी कृपा से आज तक जैनधर्म टिक पाया है। अब भी ऐसा युग आ गया है कि वीर जनता ही वीरप्रभु के धर्मकी रक्षा कर सकेगी। अतः बच्चों को छठे वर्ष से इक्कीस वर्ष तक अध्ययन के साथ व्यायाम-शालाओं में शारीरिक बलवर्द्धिनी शिक्षायें अनिवार्य कराई जावें।

यह जैनधर्म महान् पवित्र सार्व अनादि अनन्त है। अतः विरल अविरल रूप से चिरस्थिर रहेगा। स्वकल्याणार्थी दृढता के साथ जैनधर्म को पकड़े रहें। माया, मिथ्यात्व, निदान, तीनों शल्यों को निकाल फैंक दो। वर्तमान जैन अपने धर्म की प्रभावनार्थ असली ठोस पुरुषार्थ करें। "धर्मो जयति नाधर्मः"

कोई २ भोले जैन बाहुबली स्वामी के शल्य होना

स्वीकार करते हैं। किसी पूजा में भी लिख दिया है। उनका मन्तव्य है कि बाहुबली के यह शल्य लगी हुई थी कि मैं भरत की पृथ्वी पर खड़ा हूं भरत ने मुझे मान्य नहीं किया आदि ! किन्तु यह मान्यता सिद्धान्त-विरुद्ध है। क्यों कि दूसरों की पृथ्वी पर खड़े होने या बैठने चलने का परामर्श करना ही मुनि के लिये निषिद्ध है। दूसरे बाहुबली जब तीनों युद्धों में जीत चुके थे तो वह पृथ्वी भरत की कैसे रही ? बाहुबली की हो गई। तत्वार्थ सूत्र में "निःशल्यो व्रती" कहा है। "धारयते निःशल्यो योसौ व्रतिनाम् मतो व्रतिकः" (समन्तभद्र)। शल्य वाले के जब अणुव्रत ही नहीं हो सकते हैं तो महाव्रत हो जाना असाध्य ही है। हां कभी २ छठे गुणस्थान में बाहुबली के ये भाव हो गये थे कि मेरे द्वारा मेरे बड़े भाई को क्लेश पहुंचा। ऐसे कदाचित् अनुताप तो सभी मुनियों के हो जाते हैं। तभी तो वे अज्ञान या प्रमाद से एकेन्द्रिय आदि जीवों को क्लेश हो जाने पर आलोचन, प्रतिक्रमण कर लेते हैं। ये तो मुनि की दिन रात्रि की चर्या है। मुनि ये विचार सकते हैं कि मैंने गृहस्थ अवस्था में फलाने २ को कष्ट पहुंचाया, अमुक पाप किया। कषाय भावों को धिक्कार हो, आदि ये वैराग्यवर्धक भाव हैं। शल्य अवस्था में उच्च धर्म्यध्यान और क्षपक श्रेणी कैसे भी नहीं हो सकती है।

भरत मुझको नमस्कार करें ये भाव उनके तीनों कालों में न थे।

भरत जी ने नमस्कार किया तब उनको केवल ज्ञान हो गया ये तो घुणाक्षरन्याय का रूपक है। जैसे कि श्री महावीर स्वामी के मोक्ष जाने पर गौतम स्वामी को केवल ज्ञान हो गया। गौतम स्वामी के मोक्ष जानेपर सुधर्माचार्य को केवल-ज्ञान हो गया। सुधर्माचार्य के मुक्त होने पर झट जम्बू स्वामी को केवलज्ञान हो गया। इनमें मात्र कालिक सम्बन्ध है कार्य–कारण सम्बन्ध नहीं है अतः बाहुबली स्वामी सर्वथा निःशल्य थे। भावलिंगी हो कर एक वर्ष तक घोर तपस्या कर केवल–ज्ञान प्राप्त किया। "नमास्तु ते बाहुबलिने आदीश्वरशिक्षितपुत्राय"

इसी प्रकार सीता राजीमती के कतिपय बारहमासे बनाये हैं। किसी २ में "काम सतावै" आदि निर्लज्ज शब्द प्रविष्ट कर दिये हैं। यह सब अवर्णवाद हैं। इन निकट-भव्य धर्मिणियों को स्वल्प निमित्त मिलते ही संवेग निर्वेद भाव हो गये थे। जैसे कि नागपाश-बद्ध इन्द्रजीत कुम्भकर्ण के काराग्रह में पड़ते ही उत्कट वैराग्यभाव चमक गये थे कि कब कारामुक्त होंय और शीघ्र जैनेश्वरी दीक्षा लेवें। अङ्गद आदि ने कहा कि इन्द्रजीत को बड़े बन्धन प्रबन्ध से रामचन्द्र लक्ष्मण के पास ले चलो। ये बड़े

क्रूर हैं पिता की मृत्यु सुनते ही लाखों को काट डालेंगे। किन्तु जब रामचन्द्रने सशिष्टाचार इन्द्रजीत कुम्भकर्ण को बुलाया, तो वे ईर्यासमिति पालते हुये राजदरबार में आये रामचन्द्र जी उठकर सादर लाये राज्य सम्हालनेको कहा। किन्तु सर्वोत्कृष्ट मुक्ति-राज्य प्राप्त करनेके लिये शीघ्र बनमें जाकर उनने दीक्षा धारण करली और बड़वानी पर्वतसे मोक्ष प्राप्त की। 'इन्द्रजीत कुम्भयणो णिव्वाण गया णमो तेसिं' यों राजीमती, सीता, अञ्जना, द्रौपदी, सुलसा, चन्दना आदि के बड़े पवित्र भाव थे। मन-वचन-काय में कदापि कामोद्रेक की बातें न थीं। "कवयः किं न जल्पन्ति"।

केवलज्ञानी के क्षुधा आदि अठारह दोष नहीं हैं शेष सभी संसारी जीवोंमें तीव्रतम तीव्र या मन्द मन्दतम रूपसे ये दोष पाये जाते हैं, नारकियों के तीव्र भूख है देवों के मन्दतर है। सर्वार्थसिद्धि के देवों को भी भूख लगती है भले ही वे तेतीस हजार वर्ष पीछे कण्ठस्रुतामृत सरसों बराबर आहार करें, किन्तु क्षुधा वेदनीय का उदय सर्वदा है, उदीरणा कदाचित् है। किसी असकृत् गरिष्ठ-भोजी धनाढ्य को भूख कम लगे तो क्या दोष छोटा हो गया? नहीं।

इसी प्रकार अहमिन्द्रों के वेद-उदय अनुसार मन्द मैथुन भी हैं चारों संज्ञायें हैं। एकेन्द्रिय विकलत्रयों के भी

मैथुनसंज्ञा है। वेद-कर्म के उदय या उदीरणा के साथ इन्द्रियों की विषय-लोलुपता ही मैथुन है। तथा देवों के अव्यक्त रूप से बुढ़ापा, रोग, भय, चिन्ता, विस्मय आदि भी पाये जाते हैं। तभी तो अरहन्त के अठारह दोषों से रहितपन की महत्ता है। एकेन्द्रियों के तो ये सभी दोष विद्यमान हैं।

अरहन्तों में पूर्ण अहिंसकत्व है। द्रव्य भाव अहिंसा ही उत्कट धर्म है। मुनि के सङ्कल्पजा त्रसहिंसा, स्थावर-हिंसा, दोनों का त्याग है साधु के उद्योग, विरोध, आरम्भ तो हैं ही नहीं। हां श्रावक के मात्र सङ्कल्प-जन्य त्रसवध की छोड़ है। सङ्कल्प से स्थावर हिंसा करता है उद्यम, विरोध, आरम्भ में भी स्थावर हिंसा, त्रसघात हो जाता है। यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति है। निरर्गल चेष्टा नहीं। "सङ्कल्पात्कृतकारित" (रत्नकरण्ड)

एतदर्थ ही जीवकाण्ड में जीवों, योनियों, जन्मों, कुलों का परिज्ञान कराया है एकेन्द्रिय जीवोंमें सबसे बड़ा पद्म है जो कि स्वयम्भूरमण द्वीप के परले भाग में स्थित सरोवर में कुछ अधिक छोटे एक हजार योजन ऊंचा है। श्री देवीके निवासस्थान हो रहे पद्मसरोवर का कमल पृथिवी-कायिक है जो बड़े वनस्पति-कायिक कमल से पांच गुना ऊंचा है।

किसी भी पृथिवीकायिक जीव की बड़ी छोटी अव-गाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग है इस असंख्यातवें भाग में ही मध्यम, छोटी बड़ी अवगाहनाओं का अन्तर निहित है। यों श्रीदेवी के कमल में असंख्यातासंख्यात पार्थिव जीव पिण्डित हो रहे हैं जैसे कि सैकड़ों लड़ रहे क्रोधी चींटा चींटियों का झुण्ड बंध जाता है मैंने ऐसे पचासों गुच्छे देखे हैं। सुईपर रखने योग्य जल या डेल के कण में असंख्याते जीव हैं। स्वयम्भूरमण द्वीप के कमल में केवल एक वनस्पति-कायिक जीव है।

एकबात यह भी कहनी है कि मिथ्यात्व, हिंसा करना भूठ, परिग्रह आदि पाप और इन विभावों से बन्ध गये कर्म भी अनादि से चले आ रहे हैं और अनन्तकाल तक पहुँचेंगे। आठ वर्ष कम अनादि काल से मोक्ष-मार्ग भी चालू है। कोई ऐसा सर्व-शक्तिशाली आत्मा नहीं हुआ जो कि इन पापों या पापोंकी जड़ कर्मपिण्डको ही समूल चूल विनाश कर देता। यह कार्य अनन्तानन्त बलशा-लियों करके भी अशक्यानुष्ठान ही रहा, देखो पुद्गल परमाणु और सिद्ध भगवान् दोनों की शक्ति अनन्तानन्त रूप से समान है। पुद्गल परमाणुयें या स्कन्ध भी संख्या में जीव-राशि से तो अनन्तानन्त गुणे हैं। फिर कोई अ-हमिन्द्रदेव या तीर्थंकर महाराज अथवा सभी सिद्ध परमेष्ठी

चला कर समग्र अणुओं या बाईस प्रकार की वर्गणाओं का अपने अनन्तवीर्य से प्रलय भी नहीं कर सकते हैं। यदि शुद्ध परमात्मा सभी पुद्गलों या कम से कम जगद्वर्ती कर्म और नोकर्म वर्गणाओं को भी विनष्ट कर देते तो सब जीवों के संसार परिभ्रमणका बखेड़ा ही मिट जाता यह तो बड़ा भारी परोपकार था।

वैशेषिक या पौराणिकों के यहां माने गये सर्व-शक्ति-शाली परमात्मा के बूते भी यह धर्म, अधर्म का प्रत्त्य नहीं हो सका। शक्तिशाली बहुसंख्यावालों के सन्मुख बल-शाली अल्प-सख्यकों का मनोरथ सिद्ध नहीं होने पाता है थोड़ी सी कालाणुओं को मिटा देने से ही भव-झंझट दूर हो जाती, वर्तना नहीं हो पाती। आत्मा और कालाणुकी बुद्धिस्थ कुश्ती करायी जाय तो बहुत देर तक लड़ते लड़ते जोड़ बराबर छुड़ा दिये जायगे "को चालेदु' सक्को इन्दो वा अह जिणिंदो वा" ऐसा आचार्य वाक्य है आचार्य ने जिनेन्द्र की भी सामर्थ्य नहीं ऐसा स्पष्ट कह दिया है। वस्तुतः ये द्रव्य अनादि अनन्त नित्य अवस्थित हैं। कोई व्यक्ति या कोई समुदाय किसी भी एक या अनेक द्रव्यका मटिया मेट नहीं कर सकता है। असम्भव है इस कार्य को करने में सभी अशक्त हैं।

मात्र अपना लोटा छानो स्वकीय व्यक्तिमें चुपट बैठे

कतिपय अनन्तकर्म नोकर्मोंका स्व-पुरुषार्थ से क्षय कर दो अर्थात् अपनी आत्मा में जो कुछ बद्ध हुए पुद्गलों की कर्म-नोकर्म परिणति को बदल कर अन्य पुद्गल-स्वरूप हो जाने दो। यही बड़े उत्कट प्रयत्नसे साधा गया व्यक्तिगत मोक्ष है। उस अपने पर भी लगे हुये पुद्गल को असत् कर देना या बरबाद कर फूंक देना अथवा खोज खो देना तो मुक्त जीव कथमपि नहीं कर सकते हैं। धोबी या न्यारिया बिचारा मलिन कपड़े से या सोने से मैल को पृथक् कर देता है यों मैल की अन्यस्थान पर दूसरी पुद्गल पर्याय हो जाती है। मैलका मटिया मेट नहीं कर सकता है। जला दो, उड़ा दो, गाढ़ दो, काट दो, पीस दो, तो भी मल को पुद्गल-द्रव्य विद्यमान है।

बन्धुओ! जिस प्रकार पचाने वाली उदराग्नि और खाद्य-पेय का धारा-प्रवाह सम्बन्ध अविच्छिन्न है उसी प्रकार योग और कर्म-नोकर्मों का आकर्षक आकर्ष्य सं-बन्ध भी अटूट है। अतः अनादि कालीन प्रवाहित चले आ रहे कार्य-कारण भावपर कुचोद्योंकी बौछार मत गिराओ "आदहिदं कादव्वं"। यत्न से अपने पापों को टालो जैनसिद्धांत को ज्ञात कर आत्मश्रद्धा, आत्मानुभव और आत्मचर्या से निश्चय मोक्ष मार्ग में लग बैठो। तभी कर्मों का संवर और निर्जरा होकर मोक्ष पा सकोगे, यही धर्म

पालन का लक्ष्य है। जगत्में सब से बड़ा पुरुषार्थ-पूर्वक किया गया यह महान् कार्य है। कोई भी पुद्गल चाहे परमाणु या वर्गणायें अथवा स्कन्ध वहिर्भूत अवहिर्भूत दृश्य, अदृश्य कुछ भी रूपी होय वह जगत् के सभी पुद्गलों रूप परिणाम कर सकता है। भले ही अनन्त परमाणु ऐसे हैं जो अद्यापि स्कन्धरूप नहीं हुए हैं। कतिपय तो आगे भी स्कन्ध नहीं होवेंगे किन्तु सभी पुद्गलों में चाहे कोई भी पुद्गल रूप हो जाने की शक्तियां विद्यमान हैं जैसे कि जो जीव नित्य निगोद से निकला नहीं है आगे भी नहीं निकलेगा ऐसे अनन्त जीवों में सिद्ध हो जाने की द्रव्य-शक्ति का सद्भाव माना गया है। हम आप सभी संसारी जीव पुद्गलों के बहुत चमत्कार देख चुके हैं। नई देहली में राजप्रासाद बनते समय हमने सौमन पत्थर के खम्भों को खराद पर चढ़ाकर काठ की खुटी समान गोल चीकने कर दिये गये देखा है। क्रेनके द्वारा दो सौ गज दूर एक मिनटमें खम्भा हटा दिया जाता था। झट तिखने चौखने पर वे चढ़ा देते थे। विद्याधर, चक्रवर्ती, देव, इन्द्र इनसे भी बहुत बड़े कार्यों को अतिशीघ्र कर डालते हैं। चेतन के कृत्यों से जड़ पदार्थों के कार्य तो अनन्त गुणे अधिक हैं। वैज्ञानिकों ने पुद्गलों को नचा रक्खा है। मोटरकार, टैंक, बड़े एञ्जिन तारपीडो, पनडुब्बी, मशीनगनें, अणुबम,

सुरंगें, यान-विध्वंसक तोपें, विषगैसें, रेडियो, वायरलैस, घड़ीबम, वायुयान आदि रूपों में अनेक सातिशय कार्य देखे जा रहे हैं। ये सब 'विस जन्त कूड पंजर' इत्यादि गोम्मटसार अनुसार कुज्ञान हैं हिंसामय हैं। जड़ोंने भी जीवात्मा को परतन्त्र कर अनेक रङ्ग दिखाये हैं। "कर्म-स्थितिं जन्तुरनेकभूमिं नयत्यमुं सा च" (धनञ्जयः) मानव पर्याय में कर्माधीनता को मिटा सकते हो, गुरु शिक्षाओं पर चलो।

अब आप सर्वोत्कृष्ट आत्म-कल्याण के मार्ग में लगिये। देवशास्त्र गुरु सदा कल्याणमय मोक्ष-मार्ग का उपदेश देते हैं संसार-वर्द्धक या हिंसामय कर्तव्योंका नहीं।

आप प्रयत्न कर स्वकीय कषायों को न्यून करो। छः इन्द्रियों को बलात् वश में रक्खो, तभी लौकिक पारलौकिक सुखों को प्राप्त कर सकोगे। ऐदंयुगीन हिंसा-असत्य, चौर्य, व्यभिचार, मूर्च्छा, दम्भ, धोकेबाज़ी, चालाकी, विश्वासघात, कन्या-स्त्री-वास्तु हरण की पाप भित्ति पर जमाया गया दूराज्य कितने दिन ठहरेगा? शीघ्र नष्ट हो जायेगा विचारे भले लोग भी उनके पाप में फंस जायंगे यानी जो पाप आगे काल में उदय आता या पुण्यरूप होकर फल देता उस पापोदय से सज्जनभी उनके साथ कष्ट पावेंगे "कषायभावान् धिक्"।

हां अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या अपरिग्रह, परोपकार, क्षमा की नींव पर जो सुराज्य है वह चिरस्थायी है। इस राज्यमें कतिपय पापी भी सुख पावेंगे। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अनुसार पाप का भी पुण्य-रूप संक्रमण हो जाता है।

गृहस्थ पण्डित भी उपदेश दे सकते हैं। सबका स्रोत सर्वज्ञोक्त से है। उद्भट आचार्यों के बनाये हुये समयसार, कषायप्राभृत, तत्वार्थ-सूत्र, गोम्मटसार, राजवार्तिक आदि महान् ग्रन्थ हैं ही, इनकी प्रतिपत्ति बहुत बढ़ी हुई है। साथ ही गृहस्थ पण्डितों यानी धनञ्जयकवि, विद्वद्वर्य आशाधरजी टोडरमल जी आदि के बनाये गये द्विसंधान-काव्य, विषापहार स्तोत्र, धर्मामृत, प्रतिष्ठापाठ, मोक्षमार्ग प्रकाश आदि ग्रन्थ भी श्लाघनीय हो रहे हैं पञ्चाध्यायी, चारित्रसार, चर्चा-समाधान, चर्चा-शतक, धर्म-प्रश्नोत्तर, मेधावी श्रावकाचार, ज्ञानानन्द श्रावकाचार, दो क्रियाकोश को गृहस्थों ने रचा है। जयपुर के विद्वानों ने गोम्मटसार त्रिलोकसार, सर्वार्थसिद्धि, प्रमेयरत्नमाला आदि की प्रामाणिक भाषा-टीकायें लिखी हैं। मुझ छोटे से गृहस्थ ने भी श्लोकवार्तिक नामक न्यायसिद्धान्त ग्रन्थ की एक लाख तीस हजार श्लोक प्रमाण भाषाटीका लिखी है। श्रीदेव-शास्त्र गुरु के प्रसादसे यह शुभोपयोग का कार्य पन्द्रह वर्षों

में सम्पन्न हुआ है। इस निबन्ध-पिण्ड में श्री श्लोक-वार्तिक से भी सहायता ली गई है।

तथा अन्य भी पण्डित बनारसीदास जी भूधरदासजी, द्यानतराय जी भागचन्द्र जी प्रभृति श्रावक-विद्वानों के बनाये हुये पुराण, भाषापाठ, पूजन, पद्य, वीनतियों का संग्रह आदरणीय हो रहा है। अविरतसम्यग्दृष्टि व्यवहार-श्रावक श्रेणिक जी का तो एक चरित्र-ग्रन्थ ही शास्त्रगद्दी पर पढ़ा जाता है ऐसे सीता-चरित्र, रविव्रत कथा, सुगन्ध दशमी व्रत कथायेंभी शास्त्र-सभामें बांची जाती हैं। कषाय भाव मन्द होय, विशुद्ध-प्रतिभा होय, जिनशासन प्रभावना का उत्कट-भाव होय तो संस्कृत, प्राकृत, देशभाषाके ग्रन्थों को कोईभी मूल या टीका स्तुति आदि रूपसे लिख सकता है। ऐसे कार्य में लौकिक आराम और तन धन की चिन्तायें छोड़नी पड़ती हैं।

महापण्डित गोपालदास जी, त्यागी कान जी स्वामी, मुनि कुन्थुसागर जी, उदासीन दुलीचन्द्र जी आदि की लेखावलि जैन-जनता के स्वाध्याय में आ रही हैं सबका साक्षात् परम्परा सम्बन्ध श्री महावीर भगवान् से है जैसे कि बिजलीकी छोटीभी बत्ती कहीं चमक रही होय उसका सम्बन्ध बड़े बिजली घर (पावर हाउस) से है भले ही मध्यमें कई लपेट, भूषावेशा पहिन लिये जांय तद्वत् उक्त

प्रमेयों का सम्बन्ध वीरोद्भव द्वादशाङ्ग वाणी से चुपट रहा है। अप्रामाणिक वाक्यावलि की चर्चा पृथक् है सर्वत्र आभास पाये जाते हैं।

आज भी अनेक गृहस्थ पण्डित उपदेश देते हैं सभामें कतिपय मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, व्रती, त्यागी उदासीन श्रावक समझदार श्रोता उपयोग लगाकर सविनय जिन-वाणी को सुनते हैं। बाहर वेष के विना भी अनेक आत्माओं में पवित्रत्व घुस रहा है जैसे कि सातवें नरक में आठ अन्त-र्मुहूर्तकम तेतीस सागरतक सम्यग्दर्शन चमकता रह सकता है तथा द्रव्यलिङ्गी या नवम ग्रैवेयक में वहिर्वेषी के मिथ्या-त्वोदय विद्यमान है। "भरत नृप घर ही में वैरागी" अन्य भी गृहस्थ विद्वानों की अनेक अमर कृतियां हैं तीर्थंकर-जन्म मुनिदान, मन्दिर चैत्यालय बनवाना, उछाह प्रतिष्ठा कराना, संघ निकालना, विद्यालय चलाना आदि कार्यों को गृहस्थ ही कर सकता है। पांचवें से छटे सातवें गुणस्थान का मात्र सवाया ड्योढ़ा अन्तर है। सम्यक्त्वसे गुणाकार लगाना। नीचे तो शून्य है।

भ्राताजी! लेख बढ़ गया है। अन्त में यही उप-संहार करना है कि लौकिक सुखकी कामनाओं को छोड़कर आत्मीय सुखों की प्राप्ति के लिये यत्न करो। लौकिक सुख दुःख तो दैवसाध्य हैं आप लोग विपरीत

कारणों को मिलाते हैं। भाग्य से होने वाले पुत्र-प्राप्ति निरोगता, धन-सञ्चय आदि कार्यों में तो व्यर्थ पुरुषार्थ कर रहे हैं। और पुरुषार्थ से किये जाने वाले जिन-पूजन तीर्थयात्रा, तपश्चरण, ध्यान करना आदि में दैव का सहारा पकड़ते हो, कि भाई क्या करें ? धर्म करना हमारे भाग्य में ही नहीं बदा है। आप हम इन्हीं प्रमाद-पूर्ण प्रवृत्तियों से आज तक दुःख भोग रहे हैं। और यदि नहीं सम्हले तो यही मोह, अज्ञान, राग, द्वेष, द्रव्य-कर्म भाव-कर्म की परम्परा बढ़ती चली जावेगी, पुद्गल में बड़ी शक्ति है इसी ने जीवों को अनादि से पराधीन दुःखित कर रक्खा है एक बड़े पहलवानकी सरसों बरोबर विषसे कुश्ती कराइये। अणुवम को ५० मील लम्बे चौड़े क्षेत्र के सभी बलाढ्य पदार्थों से लड़ा दीजिये देखें कौन जीतता है ? बस एक धर्माचरण या तपस्या से ही पुद्गल जीता जासकता है यही सर्वांग-सुखित मोक्ष का उपाय है।

जहां तक होय शीघ्र ही मोह निद्रा को त्यागो, और कषायमय प्रकरणों में संवेग वैराग्य भावते हुये आत्म-वस्तु का स्वभाव हो रहा तथा क्षमा आदि स्वरूप-परिणमन कर रहा, दयापूर्ण इस रत्नत्रयधर्म को पालन कर कर्मों का सम्वर निर्जरा करते हुये चरम-फल निःश्रेयस को प्राप्त करो। जो कि धर्म-सेवन का प्रधान फल है। इस लेखके

आगमोक्त प्रमेय का चिन्तन करना भी शुभध्यान है अतः संवर हेतु है स्वाध्याय नामका तप है अतः निर्जरा हेतु भी है जैन-सिद्धान्तों का परिज्ञान तो सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है ही।

ओं नमः श्रीशान्तिनाथाय, नमोस्तु वर्धमानाय।

क्षुण्णीकृतकर्माष्टकजाष्टगुणा अष्टमीधरोधिष्ठाः
सिद्धाः क्षमादिरूपाः सुखिनो रत्नत्रयं ददतु धर्मम्।
नानानानात्मनीनं नयनयन-युतं तन्न दुर्नीतिमानं,
तत्व-श्रद्धानशुद्ध्याध्युषित-तनुवृहद्बोध-धामाधिरूढम्।
चञ्चच्चारित्र चक्रं प्रचुर परिचर प्रचण्ड कर्मारिसेनां,
सातुं साक्षात्समर्थं घटयतु सुधियां सिद्धिसाम्राज्यलक्ष्मीम्।
(श्लोकवार्तिक हिन्दीभाषा भाष्य)

(धर्मश्च फलश्च सिद्धान्तश्च) इस निबन्ध में जैनधर्म पालना और उसका फल तथा जैन-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

इति चावली निवासि न्यायाचार्योपाहित माणिकचन्द्र सम्पा-दित "धर्म-फल-सिद्धान्ताः" सम्पूर्णम्॥

॥ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

श्रीमन्तोर्हन्त आप्तास्त्रिदशपतिनुता वीक्ष्य निर्दोषवृत्ताद्
यस्माद्धस्तस्थमुक्ताफलमिवयुगपद् द्रव्य-पर्यायसार्थान्।
हानोपादत्युपेक्षा--फलमभिलषतो मुक्तिमार्गं शशासु-
स्तत्वज्ञानेप्सुभव्यान् स किल विजयते केवलज्ञानभानुः ॥

प्रमाण--नय--सत्तर्कैर्न्यक्कृत्यैकान्तिनां गतिम्।
हंसीस्याद्वादगीः स्वच्छा पुनीतान्ममम ानसम् ॥

द्रव्येक्षानाद्यनन्तो निखिलमतिनिदानोङ्गबाह्यांगभेदो,
निर्दोषो दुःखतप्तासुमदवनपटु--र्निष्कलङ्काशिपेद्धः।
विद्यानन्दाकलङ्कोक्त्यमृतकिरणभृत्प्रातिभाद्यैः कलाढ्यो
भावाद्येकान्तवाणी तिमिरततिभिदे द्योततां वै श्रुतेन्दुः ॥

ध्याने हित्वार्त्तरौद्रे समितिमुपगता दैशिकं संवरं ये,
ध्यायन्तो धर्म्यशुक्ले परिषहजयतो भावनेद्धाष्टशुद्धीः।
कुर्वाणाः स्वात्मयत्नादगणितगुणितां निर्जरां कर्मणांते,
निर्ग्रन्थाः संयमाद्यै स्वपरहितरताः पान्तु भाज्यास्त्रिगुप्ताः।

वीरोमास्वाम्युपज्ञाध्वगमुनिपसमन्तादिभद्राकलङ्क-
विद्यानन्दोक्तिभिर्द्राक् छलवितथवचोनिग्रहस्थान्परीक्ष्य
तत्वार्थज्ञप्तिभेदे जितविजितदशामाकलय्याप्तशास्त्र-
श्चन्द्रार्काविध्यभिज्ञोनुभवतु शिवदां न्यायसाम्राज्यलक्ष्मीं ॥

(श्लोक वार्तिक हिन्दी भाष्य)

आभार प्रदर्शन

असंख्यवन्दारुसुरेन्द्रवृन्द--निमेषशून्यादिसहस्रलोक्यम् ।
निकृष्टकर्माष्टकशैलवज्रं नमामि वीरं त्रिजगच्छरण्यम् ।।

मुमुक्षु को निश्चयनय से आत्मा ही आत्मा का उपकारी है। तभी तो उसकी निज सपर्य्या का फल स्व को ही मिलता है। स्वपुरुषार्थ-जन्य विशुद्धि परिणतियों का ही अनन्त-काल तक आत्मा आभारी रहता है। (समयसार)

हां व्यवहार में नारक, तिर्यंग्, मनुष्य और देवोंके सच्चे उपकारी पञ्च परमेष्ठी हैं। असंख्य तीर्थङ्करों के जन्म कल्याणक अवसर पर असंख्यात वर्षायुष्क नारकियों को असंख्यात बार दो दो मिनट के लिये क्षेम हो जाता है। सम्यग्दृष्टि नारकी तो पञ्चपरमेष्ठियों का बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न पूर्वक श्रद्धान करते हैं बड़े हर्षातिरेक से कहना पड़ता है कि एक बटे सोलह राजू चौड़े, एक बटे चार राजू लम्बे यों असंख्याते बड़े योजनों लम्बे चौड़े तिरछे गोल स्वयम्भूरमण द्वीपोत्तरार्ध में पल्य के असंख्यातवें भाग परिमित असंख्याते गाय, भैंस, घोड़े, सिंह आदि तिर्यंच देशव्रती हैं वे स्वर्गों नरकों या यहांसे जाते हैं अनेक मिथ्यादृष्टि वहां पहुचते हैं वहां ही सम्यग्दर्शन और देशव्रत ले लेते हैं, बहिरङ्ग निमित्त वहां नहीं हैं। ये सब परमेष्ठियों की बड़ी श्रद्धा करते हैं "धन्यास्ते"।

"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः" (विद्यानंद)

देव और मनुष्य तो परमेष्ठियोंकी आराधना करते प्रसिद्ध ही हैं तथा ऐहिक गुरु-परम्परा का भी उपकृत यह मानव है।

"उच्चैर्गोत्रं प्रणतेः" (स्वामी समन्तभद्र)

एवं ग्रन्थ जिन-चैत्य, चैत्यालय, मातृ पितृ परम्परा, विद्यालय, राजा, वैद्य, देशनेता आदि उपकारी गण भी "गुणिषु प्रमोदं" की भावना भावने वालों को स्मरणीय हैं।

मङ्गलाष्टक स्तोत्र, पूजन, तत्त्वार्थसूत्र में आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, मेघ, नदी, अन्न, प्राण, शरीर, मन वचन धर्मद्रव्य काल आदि को भी उपकारी मान्य किया है। कृतज्ञको इन सबका लक्ष्य रखना चाहिये।

भूत भविष्य उपकारकों का भी जो कृतज्ञ है वह तो पुरुषोत्तम ही है। मङ्गलाचरण या जिनपूजन में उपकारक स्मरण भी प्रयोजक है। वेदी में विराजमान, तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहन्त की हम, आप पूजा करते हैं। यहां भी उपकारक के तीन कल्याणक भूत हैं एक कल्याण भविष्य है। तीन काल के तीर्थङ्करोंको चौबीसीके पूजन समान भूत भविष्य वर्तमान उपकारकों का अधमर्ण हो रहा कृतज्ञ तो महान् आत्मा है वैसे अधमर्ण (धन का कर्जदार) दीक्षा नहीं ले सकता है "अधमर्णः प्रव्रज्यां नार्हति" किन्तु यह उपकारकों का अविस्मर्ता अधमर्ण कृतज्ञ तो दीक्षा लेना क्या दूसरोंको दीक्षा शिक्षा दे भी सकता है। चन्द्रप्रभ काव्य में कृतज्ञता को सर्वोत्कृष्ट गुण कहा है।

सगरचक्रवर्ती ने असंख्यात वर्षों पश्चात् जन्म लेने वाले

आभार प्रदर्शन

असंख्यवन्दारुसुरेन्द्रवृन्द-निमेषशून्याक्षिसहस्रलोक्यम्।
निकृष्टकर्माष्टकशैलवज्रं नमामि वीरं त्रिजगच्छरण्यम्॥

मुमुक्षु को निश्चयनय से आत्मा ही आत्मा का उपकारी है। तभी तो उसकी निज सपर्य्या का फल स्व को ही मिलता है। स्वपुरुषार्थ-जन्य विशुद्धि परिणतियों का ही अनन्त-काल तक आत्मा आभारी रहता है। (समयसार)

हां व्यवहार में नारक, तिर्यग्, मनुष्य और देवोंके सच्चे उपकारी पञ्च परमेष्ठी हैं। असंख्य तीर्थङ्करों के जन्म कल्याणक अवसर पर असंख्यात वर्षायुष्क नारकियों को असंख्यात बार दो दो मिनट के लिये क्षेम हो जाता है। सम्यग्दृष्टि नारकी तो पञ्चपरमेष्ठियों का बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न पूर्वक श्रद्धान करते हैं बड़े हर्षातिरेक से कहना पड़ता है कि एक बटे सोलह राजू चौड़े, एक बटे चार राजू लम्बे यों असंख्याते बड़े योजनों लम्बे चौड़े तिरछे गोल स्वयम्भूरमण द्वीपोत्तरार्ध में पल्य के असंख्यातवें भाग परिमित असंख्याते गाय, भैंस, घोड़े, सिंह आदि तिर्यंच देशव्रती हैं वे स्वर्गों नरकों या यहांसे जाते हैं अनेक मिथ्यादृष्टि वहां पहुचते हैं वहां ही सम्यग्दर्शन और देशव्रत ले लेते हैं, बहिरङ्ग निमित्त वहां नहीं हैं। ये सब परमेष्ठियों की बड़ी श्रद्धा करते हैं "धन्यास्ते"।

"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः" (विद्यानंद)

देव और मनुष्य तो परमेष्ठियोंकी आराधना करते प्रसिद्ध ही हैं तथा ऐहिक गुरु-परम्परा का भी उपकृत यह मानव है।

"उच्चैर्गोत्रं प्रणतेः" (स्वामी समन्तभद्र)

एवं ग्रन्थ जिन-चैत्य, चैत्यालय, मातृ पितृ परम्परा, विद्यालय, राजा, वैद्य, देशनेता आदि उपकारी गण भी "गुणिषु प्रमोदं" की भावना भावने वालों को स्मरणीय हैं।

मङ्गलाष्टक स्तोत्र, पूजन, तत्त्वार्थसूत्र में आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, मेघ, नदी, अन्न, प्राण, शरीर, मन वचन धर्मद्रव्य काल आदि को भी उपकारी मान्य किया है। कृतज्ञको इन सबका लक्ष्य रखना चाहिये।

भूत भविष्य उपकारकों का भी जो कृतज्ञ है वह तो पुरुषोत्तम ही है। मङ्गलाचरण या जिनपूजन में उपकारक स्मरण भी प्रयोजक है। वेदी में विराजमान, तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहन्त की हम, आप पूजा करते हैं। यहां भी उपकारक के तीन कल्याणक भूत हैं एक कल्याण भविष्य है। तीन काल के तीर्थङ्करोंको चौबीसीके पूजन समान भूत भविष्य वर्तमान उपकारकों का अधमर्ण हो रहा कृतज्ञ तो महान आत्मा है वैसे अधमर्ण (धन का कर्जदार) दीक्षा नहीं ले सकता है "अधमर्णः प्रवृज्यां नार्हति" किन्तु यह उपकारकों का ऋणिधारक अधमर्ण कृतज्ञ तो दीक्षा लेना क्या दूसरोंको दीक्षा शिक्षा दे भी सकता है। चन्द्रप्रभ काव्य में कृतज्ञता को सर्वोत्कृष्ट गुण कहा है।

सगरचक्रवर्ती ने असंख्यात वर्षों पश्चात् जन्म लेने वाले

श्री नेमीश्वर भगवान् के निर्वाण क्षेत्र होने वाले गिरनार पर्वत की प्रथम ही तीर्थ वन्दना की थी, आस्ताम् ।

सहारनपुर में लाला जम्बूप्रसाद जी प्रद्युम्नकुमार जी का घराना यावज्जैनों में प्रख्यात है ये तीनों सम्प्रदायों के जैनों में सर्वोत्कृष्ट जमींदार हैं। ८० ग्रामों के अधिपति हैं।

मैं बाईस वर्ष से श्रीमान् लाला प्रद्युम्नकुमार जी रईस के के यहां आजीविकित निवास करता हूं। लाला जी ने अपने प्रासाद में उच्च निवासस्थान दे रखा है। लाला जी बड़े आदर सन्मान के साथ मुझे बड़ा विद्वान् मानकर सदा सत्कृत करते हैं। जैन-जगत् प्रसिद्ध, धर्मप्राण, तीर्थभक्त-शिरोमणि, स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसाद जी भरतवत्भोग-विरक्त थे। उन्हीं मान्य पिता जी के अनुरूप अनेक गुण लाला प्रद्युम्नकुमार जी में हैं। बड़े दयालु उदार तथा विद्वदनुरागी हैं। स्वभाव मृदु है, मिलन-प्रकृति हैं। पांच सौ रुपये मासिक दान करते हैं। अन्य भी हजारों रुपयों का दान अपने हाथों से कर चुके हैं। जिनपूजन, शुभाचरण बढ़े हुये हैं। गृहस्थ विद्वान् को आदर विनय करने वाले प्रभु का प्रसङ्ग बड़े भाग्य से मिलता है। तभी विद्वान का क्षयोपशम, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा, निराकुलता, निश्चिन्तता, स्वोन्नति, आत्म-गौरव आदि रक्षित रह पाते हैं। रोग आदि के प्रकरणों पर हमारे कष्टों के निवारणार्थ लक्ष्य रखते हैं। आचार-विचार बड़ा अच्छा है। बाईसवर्ष से आज तक आजीविका प्रदान कर रहे हैं, भविष्यके लिये भी उच्च-भाव हैं।

इनकी धर्मपत्नी श्रीमती सौभाग्यवती बहू जी कञ्चनबाई की प्रकृति कोमल, भद्र, वत्सला है। धर्मकार्योंमें दत्तावधान हैं। मान तो छू भी नहीं गया है। मेरी अधिक मान्यता करती हैं। पति के अनुरूप ही गुण हैं, दम्पती में गाढ़ स्नेह है।

ऐसे ही इनके पुत्र सौम्याकृति, कुल-प्रदीप, सज्जन, बाबू चिरञ्जीव देवकुमार जी हैं। सर्वार्थसिद्धि तक धर्मशास्त्र पढे हुये हैं। अंग्रेजी हिन्दी की भी अच्छी योग्यता है। अवस्था अभी बीस वर्ष की है। भविष्यमें अच्छे होनहार हैं। ढाई वर्ष प्रथम विवाह हो चुका है। छोटी बहू कानपुर के रायसाहिब लाला रूपचन्द्र जी की लड़की है। लज्जा, अल्पभाषण, कोमल प्रकृति, बड़ों की सेवा, शिक्षा, सदाचार, अतिथि-सत्कार गुण विद्यमान हैं।

लाला प्रद्युम्नकुमार जी के पितृव्य रायबहादुर लाला हुलासराय जी रईस प्रसिद्ध धार्मिक हैं, जिन पूजन का विशेप अनुराग है जैन पण्डितोंका आदर, पुरस्कार, विनय करने में सदा कटिबद्ध रहते हैं। सैकड़ों दुःखियों का उपकार किया है, सदाचारी, भव्य-भद्रपरिणामी गुप्तदानी हैं। ये "गगनं गगनाकारं" के समान अनन्वय हैं। अजातशत्रु हैं। यह वस्तुस्थिति है, चाटुकार नहीं। मैं इस परिवार के समीचीन व्यवहारों से नितान्त आभारी हूं।

धर्म-प्राण, उदासीन श्रावक, दयासिन्धु जयचन्द जी भक्त, तो त्यागियों से भी बढ़कर हैं। दसों वर्षों से दही, घी, दूध,

श्री नेमीश्वर भगवान् के निर्वाण क्षेत्र होने वाले गिरनार पर्वत की प्रथम ही तीर्थ बन्दना की थी, आस्ताम्।

सहारनपुर में लाला जम्बूप्रसाद जी प्रद्युम्नकुमार जी का घराना यावज्जैनों में प्रख्यात है ये तीनों सम्प्रदायों के जैनों में सर्वोत्कृष्ट जमींदार हैं। ८० ग्रामों के अधिपति हैं।

मैं बाईस वर्ष से श्रीमान् लाला प्रद्युम्नकुमार जी रईस के के यहां आजीविकित निवास करता हूं। लाला जी ने अपने प्रासाद में उच्च निवासस्थान दे रखा है। लाला जी बड़े आदर सन्मान के साथ मुझे बड़ा विद्वान् मानकर सदा सत्कृत करते हैं। जैन-जगत् प्रसिद्ध, धर्मप्राण, तीर्थभक्त-शिरोमणि, स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसाद जी भरतवत्भोग-विरक्त थे। उन्हीं मान्य पिता जी के अनुरूप अनेक गुण लाला प्रद्युम्नकुमार जी में हैं। बड़े दयालु उदार तथा विद्वदनुरागी हैं। स्वभाव मृदु है, मिलन-प्रकृति हैं। पांच सौ रुपये मासिक दान करते हैं। अन्य भी हजारों रुपयों का दान अपने हाथों से कर चुके हैं। जिनपूजन, शुभाचरण बढ़े हुये हैं। गृहस्थ विद्वान् को आदर विनय करने वाले प्रभु का प्रसङ्ग बड़े भाग्य से मिलता है। तभी विद्वान का क्षयोपशम, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा, निराकुलता, निश्चिन्तता, स्वोन्नति, आत्म-गौरव आदि रक्षित रह पाते हैं। रोग आदि के प्रकरणों पर हमारे कष्टों के निवारणार्थ लक्ष्य रखते हैं। आचार-विचार बड़ा अच्छा है। बाईसवर्ष से आज तक आजीविका प्रदान कर रहे हैं, भविष्यके लिये भी उच्च-भाव हैं।

इनकी धर्मपत्नी श्रीमती सौभाग्यवती बहू जी कञ्चनबाई की प्रकृति कोमल, भद्र, वत्सला है। धर्मकार्योंमें दत्तावधान हैं। मान तो छू भी नहीं गया है। मेरी अधिक मान्यता करती हैं। पति के अनुरूप ही गुण हैं, दम्पती में गाढ़ स्नेह है।

ऐसे ही इनके पुत्र सौम्याकृति, कुल-प्रदीप, सज्जन, बाबू चिरञ्जीव देवकुमार जी हैं। सर्वार्थसिद्धि तक धर्मशास्त्र पढ़े हुये हैं। अंग्रेजी हिन्दी की भी अच्छी योग्यता है। अवस्था अभी बीस वर्ष की है। भविष्यमें अच्छे होनहार हैं। ढाई वर्ष प्रथम विवाह हो चुका है। छोटी बहू कानपुर के रायसाहिब लाला रूपचन्द्र जी की लड़की है। लज्जा, अल्पभाषण, कोमल प्रकृति, बड़ों की सेवा, शिक्षा, सदाचार, अतिथि-सत्कार गुण विद्यमान हैं।

लाला प्रद्युम्नकुमार जी के पितृव्य रायबहादुर लाला हुलासराय जी रईस प्रसिद्ध धार्मिक हैं, जिन पूजन का विशेष अनुराग है जैन पण्डितोंका आदर, पुरस्कार, विनय करने में सदा कटिबद्ध रहते हैं। सैकड़ों दुःखियों का उपकार किया है, सदाचारी, भव्य-भद्रपरिणामी गुप्तदानी हैं। ये "गगनं गगनाकारं" के समान अनन्वय हैं। अजातशत्रु हैं। यह वस्तुस्थिति है, चाटुकार नहीं। मैं इस परिवार के समीचीन व्यवहारों से नितान्त आभारी हूं।

धर्म-प्राण, उदासीन श्रावक, दयासिन्धु जयचन्द जी भक्त तो त्यागियों से भी बढ़कर हैं। दसों वर्षों से दही, घी, दूध,

मीठा, तेल, हरियां सबका त्याग है। मात्र मका या चना अपने हाथसे भूंजकर चाब लेते हैं आठ बर्षोंसे दाल, भात, रोटी, पूड़ी पकवान, शाक नहीं खाया। सदा बच्चों, युवाओं, वृद्धों को धर्मपालन में निमग्न करते रहते हैं। परोपकारी सज्जन, दया-मूर्ति हैं। इनके उद्योग से यहां एक शुद्ध जैनऔषधालय चार बर्ष से चल रहा है। प्रतिदिन नव्वै रोगियों को औषधियां अ-मूल्य बटती हैं। यहां इनके तीनसौ जैनपुत्र चेले हैं। जो कि यहां या बाहर जाकर अथवा मेलों में धर्म्यक्रियाओं का प्रचार करते हैं इनने सैकड़ों बन्धुओंको आजीविका से लगाया है, हजारों कुत्तों, लाखों चूहों, पशु पक्षियों, करोड़ां अरबों असंख्यों चीटियों पई, घुन, लटों आदिको मौतसे बचाया है। बिद्वान् की तात्त्विक चर्चा को बड़ी श्रद्धा से समझते हैं। ये शास्त्रज्ञ हैं।

मेरे कुटुम्बीजनों ने मुझे निराकुल, निश्चिन्त, सवैयावृत्त्य, सामोद रक्खा है वे मेरे अनुकूल प्रवर्त रहे हैं। गृहस्थ की बुद्धि-स्थिरता, धर्मपालन, ग्रन्थलेखन, उचितशुद्धाहार, आरोग्य में ये सभी सातिशय बहिरङ्ग कारण हैं। अन्य भी सद्भाव रखते हैं। परस्परोपग्रहो जीवानाम्। मैं इन सब का आभारी हूं।

स्याद्वाददीधितिसहस्रनिरस्तमिथ्या-
बादत्रिषष्ठि—सहितत्रिशतीतमिस्रः।
निर्दोषवृत्तमहितो जिनपस्य जीयाद्
विश्वज्ञबोध-तरणिर्जगदेकमित्रम्॥

आभारभारभृत—माणिकचन्द्र कौन्देय।

सम्मति

(१)

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माता वे विद्वान हैं जिनका दिगम्बर-जैन समाज में सर्वोच्च स्थान है। श्रीमान् पण्डित वंशीधर जी इन्दौर, प० मक्खनलाल जी शास्त्री मुरेना, पं० देवकीनन्दन जी कारञ्जा, पं० राजेन्द्रकुमार जी मथुरा, पं० पन्नालाल जी सोनी, पं० कैलाशचन्द्र जी बनारस, पं० जगन्मोहनलाल जी और गुरु जैसे जो विद्वान मुरेना विद्यालय से तयार हुये हैं प्रायः सभी ने आप से न्यायदीपिका से श्लोकवार्तिकान्त न्यायशास्त्रों का अध्ययन किया है। जम्बू-विद्यालय सहारनपुर में भी आपने बीसों छात्रों को जैनन्याय तथा गोम्मटसार, राजवार्तिक, प्रवचनसार, पञ्चाध्यायी त्रिलोकसार आदि सिद्धांतग्रन्थ पढ़ाये हैं। आप न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धांत आदि विषयों के तथा षड्-दर्शन के अवगाही विद्वान हैं। न्याय, सिद्धांत नीति आदि विषयों के लगभग ८० हजार श्लोक आपको कण्ठस्थ हैं। आपने न्याय तथा सिद्धांत के प्रमुख ग्रन्थ श्लोकवार्तिक का एक लाख तीन हजार श्लोक प्रमाण विशाल हिन्दी-भाष्य किया है। पाठक महानुभाव श्रीमान् पूज्य पण्डित माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य की विद्वत्ता इन थोड़े शब्दों से

आंक सकते हैं। आप अब अध्यापन कार्य छोड़कर धार्मिक ग्रन्थ-स्वाध्याय, धर्माचरण में समय यापन करते हैं। अवस्था ६१ वर्ष है।

आपने इस पुस्तक में 'धर्म तथा धर्म-साधन का फल और जैन तात्त्विक सिद्धांत' इन विषयों का अन्तस्तत्त्व स्पष्ट कर दिया है। 'धर्मसाधक या ध्याता के लिये उपसर्ग परीषह-विजय श्रेयस्कर है अथवा किसी देव आदि द्वारा उपसर्ग-निवारण हित-कर है? इस विषयका बहुत सरल सुन्दर विवेचन किया है। आप ने अपनी तार्किक तुला से तुलना करके 'कथित देवातिशय (देव-कृत सहायता से सङ्कट निवारण) तथा धीरता वीरता से घोर कष्ट सहन एवं देवोपनीत पदार्थ यथार्थ हैं' इन बातों का ठीक वजन कर के पाठकों के सन्मुख रख दिया है।

इसके सिवाय 'एकेन्द्रिय आदि असैनी जीवों के दर्शन-मोहनीय आदि अष्ट-कर्मबन्ध किस प्रकार होता है' आदि रहस्य-पूर्ण बातों का विवेचन प्रौढ़ प्रांजल भाषा में किया है। गत २५ ३० वर्ष से किसी भी विद्वान द्वारा लिखी गई ऐसी पुस्तक देखने में नहीं आई। अत: यह पुस्तक अपने रूप में अनूठी पुस्तक है।

अजितकुमार जैन शास्त्री,

अकलङ्क-प्रेस सहारनपुर

(२)

जैनों के अल्प-संख्यक होने के कारण उन पर अन्य

जातियों के ईश्वर-कर्तृत्ववाद का प्रभाव पड़ रहा है और उनकी असावधानी एवं शिथिलता के कारण जैनों में एक प्रकार का मिथ्यात्व घुस गया है। श्रीमान् सिद्धांत महोदधि, तर्करत्न, विद्वद्वर्य पण्डित माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य ने इस पुस्तक में इस विषय पर बड़ा सुन्दर तथा युक्तियुक्त विवेचन किया है। मुझको पूर्ण आशा है कि इस पुस्तक स्वाध्याय से जैनों को मिथ्यात्व त्यागने में अत्यन्त सहायता प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त पं० जी महोदय ने इस पुस्तक में अपने चिर-अभ्यस्त ज्ञान से जिनागम का मथन कर बहुत सी रहस्यपूर्ण बातें उद्धृत की हैं।

इस पुस्तक के स्वाध्याय से मुझको बहुत लाभ तथा ज्ञान प्राप्त हुआ है। पं० जी महोदयने स्थान २ पर प्रमाण व युक्तियां भी दी हैं। ध्यान और ध्यातव्य विषयों का भी उत्तम विवेचन किया है। जैन-समाज आपका अत्यन्त कृतज्ञ है कि आपने केवल परोपकार बुद्धि से अपना अमूल्य समय तथा परिश्रम इस पुस्तक के लिखने में व्यय किया है, और विशाल-हृदय से समाज के सामने सैंकड़ों महान् ग्रन्थों का स्वाध्याय व मनन के पश्चात् निकाले हुये रहस्यपूर्ण सिद्धांत-तत्त्व रख दिये हैं। मैं आपको इसके लिये हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

रत्नचन्द्र जैन,
मुख्तार

नेमिचन्द्र जैन बी० कॉम,
(वकील)

सहारनपुर ३०-११-४७

परिशिष्ट निवेदन

नानावस्तुस्वभावभ्रमकलितवपुः स्यात्स्वतत्वाप्यवीचि,
रत्नाना अप्यगाधे गणधरमुनयः स्नान्ति यद्बोधतोये।
सिद्धार्थापत्यवीरोद्भव—सकल—जगतारिसामर्थ्यजुष्ट—
ब्राह्मी गङ्गा पुनीताद्दुरितनिरसनी चिद्रुहा भव्यहंसान् ॥

(पिता जी)

मैं पूज्य पिता जी पं० माणिकचन्द्र जी का अग्रज (बड़ा) पुत्र हूं। मेरा लघु भ्राता चिरञ्जीव प्रेमचन्द्र है, भद्र स्वभाव है। मैंने पिता जी से शास्त्रीय और न्यायतीर्थ परीक्षा तक के सिद्धान्त न्याय ग्रन्थ पढे हैं। पिता जी ने परिश्रम कर इस पुस्तक को लिखा है। अनेक प्रतिपादन तो ऐसे हैं जो मैं भी बुद्धि पर जोर लगाकर भी नहीं समझ पाता हूं। आप भी मन, वचन, काय से प्रयत्न कर दो तीन बार स्वाध्याय करें। सभी लेख ज्ञातव्य हैं। लोकत्रय में सब से बड़े ज्ञानदानी तो श्री अरहन्तदेव हैं। द्वितीय श्रीगौतम गणधर, भद्रबाहु, धरसेन, भूतबलि कुन्दकुन्द. समन्तभद्र, अकलङ्कदेव, नेमिचन्द्र, विद्यानन्द आदि प्रकाण्ड आचार्य महोदय हैं। किन्तु पूज्य पिता जी ने भी उन्हीं से प्राप्त कर यह

समयोचित ग्रन्थ लिख कर विशेष ज्ञानदान किया है। आपका उत्कृष्ट उद्देश्य तो प्रयत्न-पूर्वक सर्व कर्मों का मोक्ष करना है। एकेन्द्रिय जीव भी व्यक्त अव्यक्त पुरुषार्थ करके वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम कर और सहभावी ज्ञानावरण का यत्नपूर्वक क्षयोपशम करता हुआ स्पर्शनेन्द्रिय-जन्य ज्ञान उपजा लेता है। संज्ञी नर तो प्रत्येक ज्ञान को उपजाने में अधिक वीर्ययुक्त होकर श्रम करते हैं। लेख वचन चेष्टायें उस प्रयत्न को करने में अवलम्ब हैं। इन निमित्तों से पण्डितों की आत्मा में स्वपुरुषार्थ कर के ऊंचा श्रुतज्ञान उपजा लिया जाता है इसी लिये प्रयत्नपूर्वक किया गया स्वाध्याय सभी श्रावक या मुनियों का आवश्यक कर्तव्य माना है किसी किसी निविड पंक्ति को लगाने में जाड़ों में पसीना आ जाता है मस्तिष्क घूर्णन हो जाता है। इस संकलनके स्वाध्याय से थोड़ा भी आवरण हटेगा यह एक देश निर्जरा है।

बन्धने, छूटने के विभिन्न ढङ्ग हैं। नाना पदार्थों को अनेक प्रकारके निमित्तों से बांध दिया जाता है। जैसे पत्थरको चपड़ा से, काठ को सरेश से, आत्मा को कषायों से, सोने चांदी को टांके से, कागज को गोंद से, दम्पती को स्नेह से, कपड़े को डोरा से, ईंट को चूना से, ज्वर को अपथ्य से, हड्डी को औषधि-तैल से, मित्रों को समप्रकृतित्व से, माता पुत्र को वात्सल्य से, कुटुम्बियोंको निश्छद्म व्यवहार से, धार्मिकों को सदाचार से जोड़ दिया जाता है। तद्वत् आत्मा और कर्मों को मिथ्यात्व, असंयम और प्रमादों से बन्धन-बद्ध कर दिया जाता है। इसी प्रकार

पदार्थों के विभाग करने के भी साधन अलग हैं। सोने के मल को अग्नि या तेजाब से हटा दिया जाता है। पानी का मल फिटकरी से, ऊनी वस्त्र का मल पैट्रोल से, डामरका मल मिट्टी के तेल से दूर हो जाता है। आत्मा और स्थूल शरीर के सम्बन्ध को विष, शस्त्राघात, रक्तक्षय, तीव्रसंक्लेश से हटा दिया जाता है। पेट मल को जमालगोटा से, संखिया मल को गोदुग्ध से, कोष्ठ मल को त्रिफला से, ज्वर को ज्वरांकुश से पृथक् कर दिया जाता है। तद्वत् कर्म और आत्मा को रत्नत्रय, संयम, तपस्या, ध्यान, करके विभक्त कर देते हैं। प्रामाणिक पुस्तकाध्ययन से अज्ञान दूर हो जाता है।

इस निकृष्ट काल में जैनों कर के अन्य धार्मिक आचरणों के समान तात्त्विक पुस्तकें लिखना भी दुस्साध्य होगया है। पुनः कोई वाच्यता, ईर्ष्या, कुचोद्य, शङ्कायें उठाना, खण्डन, आक्षेप, निन्दा, कदारोप आदि छुरे छुरियों की पैनी धार के मध्य बैठ कर लिखे भी, तो पचगुनी लिखाई, छपाई, भेजाई के कार्यों में सैकड़ों हजारों रुपये कौन धनिक लगावे। दो चार विद्वानों ने तात्त्विक पुस्तकें लिखीं किन्तु वे अचिन्तित विघ्नों के आजाने से हतोत्साह हो गये। इस पैसेके युगमें धर्मसेवन में भी धन की आवश्यकता है। निस्पृह मुनि विचारे कितने हैं? सर्वत्र द्रविणाकांक्षा पाई जाती है। मात्र शिखर जी की यात्रा में ही एक आदमी को कम से कम पचास रुपये चाहिए। प्रवास की कठिनाइयों का झेलना सूची-शय्या पर बैठना है। पैदल भी जावे तो दो महीने तक

रिक्त पेट को भोजन तो चाहिये ही। त्यागियों का आदर कैसा होता है ? यह उनको स्वयं-वेद्य है। यों आज कल जैन समाज में योग्य ग्रन्थों का प्रकाशन मन्द पड़ गया है। आर्य-समाजियों वैष्णवों, श्वेताम्बरों में अनेक ग्रन्थ-प्रकाशन संस्थायें हैं। दिग-म्बरों में नहीं सदृश हैं, छोटी मोटी हैं भी वे लक्ष्मीपतियों के सर्वाधिकार में हैं। ठोस कृतियों को वे प्रकाशित नहीं करते हैं। अच्छे लेखकों को प्रोत्साहन भी नहीं देते हैं। वहां स्वामियों को जो रुचेगा सो होगा। पाण्डित्य की प्रमुखता नहीं है।

पुस्तकें छपाकर बेचने वाली संस्थाओं के लक्ष्य ही न्यारे हैं। दिगम्बर जैनों की परिस्थितियां ही विलक्षण हैं चार सौ वर्ष के प्राचीन विद्वान् ने ठीक कहा है कि—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः, प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये, जीर्णं मन्ये सुभाषितम्॥

सभी धार्मिक अनुष्ठानों में तथा विशेषतः तात्त्विक पुस्तकें या प्रौढ-ग्रन्थों की भाषा टीका लिखने में जिनेन्द्र-भक्ति, जैनग्रन्थों का पुरुषार्थ से अन्तःप्रविष्ट अध्ययन, शुभ-विचार, तीर्थ-यात्रा, प्रतिभा, शुद्ध-भोजन, शास्त्रान्तरज्ञान, ब्रह्मचर्य, तर्कणाशक्ति आदि गुण कारण हैं तथा दूसरोंसे वैय्यावृत्त्य या खुशामद कराते रहना अकर्मण्य चुप बैठना, पुजापा अल्पसार पुस्तकें या अखबार पढ़ना विनोद-क्रीड़ा, मानसिक अशुद्धि भावहिंसा, प्रवेशी स्वाध्याय न करना, कोरा अभिमान, आलस्य, खाद्य-पेय आदि के बाह्य सुखों

का स्वाद, कुटुम्बि-स्नेह, व्यर्थ मोह, धनार्जन परत्व आदि दोष प्रति बन्धक, हैं।

यों कतिपय परिस्थितियों को देख कर किन्हीं त्यागी या विद्वानों ने "मौनं सर्वार्थसाधनम्" का आश्रय ले लिया है। इस कथन से बोधित या प्रेरित हो कर कोई विद्वान् या त्यागी नवीन प्रतिपादन पद्धति से प्रौढ तात्त्विक पुस्तकें लिखेंगे तो वे इस युगमें जैनाजैन जनता का महान् उपकार करेंगे। राजवार्तिक गोम्मट-सार श्लोकवार्तिक आदि खानोंमें असंख्य प्रमेय-रत्न भर रहे हैं। समुद्रावगाहन कर उनको युक्तियों और दृष्टान्तों द्वारा भव्य देश-भाषा में प्रकट दिखा देने की आवश्यकता है। प्रमाणों, नयों, षड्-द्रव्यों, लेश्याओं, घर्माभू, भोजन शुद्धि, एकेन्द्रियजीवसिद्धि, तत्त्वज्ञान, सूर्यभ्रमण, सप्तभङ्गी, सम्यक्त्व, ध्यान, शरीरकर्मरचना आदि विषयों पर कतिपय तत्त्वज्ञ सिद्धान्त पुस्तकें लिखे जाने की प्रचुर कांक्षायें हैं। तभी विशाल जिनेन्द्रशासन की वज्रलेप प्र-भावना हो सकेगी। हित, गम्भीर, महान्, जैन साहित्य के सन्मुख आधुनिक उपलब्ध सैकड़ों गुना अल्पसार साहित्य छोटा, फीका जंचेगा।

सहारनपुर में सब से छोटा खाने योग्य खीरा छह माशे का होता है। और मालवे में पांच सेर पक्के का खीरा उपजता है। यहां बहुत पक्का आम एक तोले का लगता है। और बड़ा आम सौ तोले तक का होता है। मध्यम अवगाहनाओं के धारी आम्रफल भी यहां पाये जाते हैं। हमारे घर में एक छोटी कंसैंडी

ऐसी है जिसमें केवल तीन तोला दाल बनती है। बड़े भगोने में पांच सेर दाल पकती है। लाला जी के यहां एक पारछा ऐसा है जिस में पांच मन साग छुक जाता है। अजमेर की दरगाह में एक डेग ऐसी है जिस में पांच सौ मन खीर रंधती है। ऐसे ही छह माशे से लेकर सौ मन तक की घड़ियां देखी गई हैं। तद्वत मनुष्यों, पुद्गलों, देवों और दैवों के कार्यों में तथा विद्वल्लेखों में भी तारतम्य है पाग, भाग, वाणी, सूरत, विवेक, प्रकृति, हस्ताक्षरों के समान बड़े विद्वान् और छोटे पण्डित के लेखों में बड़ा अन्तर है।

विद्वान् सूर्य समान स्वपरप्रकाशक है। सूर्य मूलमें ठंडा है किरणें उष्ण हैं। सूर्य से कोई रत्ती भर किरण यहां नही आती हैं यों सूक्ष्मरीत्या असंख्याते पृथ्वी-कायिक जीव वहां जन्म, मरण कर रहे हैं और अनन्ते पुद्गल स्कन्ध सूर्य में से आते जाते रहते हैं उनका प्रकाश या किरणों से कोई सम्बन्ध नहीं है सूर्य और आलोकित पदार्थों के मध्य क्षेत्र में अनन्त बादर पुद्गल भरा हुआ है। वह सूर्य निमित्त से उष्ण हो जाता है जैसे अग्नि के निमित्त से जल गर्म हो जाता है। टोकनी के जल में चूल्हे से रत्तीभर भी आग नहीं आती है अग्नि स्पर्श से पैंदा तप्त हो जाता है पैंदे से छुआ पानी भी गर्म हो जाता है। नैयायिक गर्म पानी में अग्नि मिल जाना स्वीकार करते हैं सो ठीक नहीं है। दीपक प्रकाश से भी मध्यवर्ती पुद्गल प्रकाशित हो जाता है। जैनसिद्धांत यों है कि पौद्गलिक काला अन्धेरा शुक्ल-प्रकाशमय परिणम जाता

है। और दीपक में से कुछ आता जाता नहीं। शीतल सूर्य के निमित्त से सौ योजन ऊपर, पचास हजार तिरछा और अठारहसौ योजन नीचे भरे हुये बादर स्कन्ध प्रतापित, प्रकाशित हो जाते हैं। हरा कपड़ा और लाल कपड़ा दोनों मूल में ठण्डे हैं। किन्तु हरा वस्त्र दुखती आंखों पर रखने से लाभ होता है और लाल कपड़े की कान्ति से हानि।

कस्तूरी, सोंठ, पीपल, चित्रक, पीपलामूल भी परिपाक में उष्ण हैं मूल में नहीं। मकरध्वज, वृहच्चन्द्रोदय शीशी में ठण्डे रक्खे हैं आसन्न-मरण नर की शीत व्यथा में एक चावल बरोबर देते ही सम्पूर्ण शरीर गर्मागर्म हो जाता है। हां अग्नि तो मूल और प्रभा दोनों में उष्ण है। चन्द्रमा दोनों में ठण्डा है। बस इन्हीं पदार्थों के समान प्रतिपादक के ज्ञान की किरणें प्रतिपाद्य की आत्मा को ज्ञानप्रकाशित करती हैं। आता जाता कुछ भी नही है। मात्र छोटा सा पृथग्भावरूप से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। क्रमिक स्वाध्याय से अधिक ज्ञान लाभ होता है चारित्र पालन भी क्रमबद्ध होय।

हम आप, अष्टमी चौदस या प्रतिदिन जिन-पूजन में सचित्त अचित्त रली मिली सामग्री चढ़ाते हैं, पर्व के दिन हरित वनस्पति नहीं खाते। सचित्त जल या नमक की डेली भी खा लेते हैं। सचित्त जल से अभिषेक करते हैं। चढ़ाने के पानी में एक लौंग डाल देने से क्या हो जाता है? । एक लोटा जल में एक तोला लवणचूर्ण घोलो तब रसान्तर होकर अचित्त बने। धूम

को सचित्त अग्निमें डालते हैं। कोई कोई घृतदीपक या कर्पूर-दीपक भी चढ़ाते हैं, दक्षिण देशमें इससे भी अधिक सचित्त द्रव्य चढाये जाते हैं। यों हम पाक्षिकों के कोई पांचवीं प्रतिमा र्क क्रिया हो रही है। कोई पहिली प्रतिमा की भी नहीं। हां अभ्यास रूप जो हो जाय अच्छा ही है। क्रम होता तो अच्छा था। आप अष्टमी, चौदस, अष्टान्हिका, दशलक्षण, महीने की आदि तिथि, वर्ष का आद्य-दिवस, स्वजन्मतिथि आदि तिथियों में अधिक धर्म सेवन करो। श्रावक को विशेष तिथियों का लक्ष्य रखना चाहिये मुनिमहाराज अतिथि हैं, गृहस्थ सतिथि हैं।

इस पुस्तकाध्ययन से आप को कैसा ज्ञान लाभ हुआ ?। इसका अनुभव तो आप ही करेंगे स्वयं आत्माही रत्नत्रयमय है। पुस्तक तो बाह्य निमित्तमात्र है। इस निमित्त के विना ज्ञानघन रसास्वाद तो लेखक महोदय को प्राप्त हुआ ही होगा। मैं पिताजी की प्रकृति को जानता हूं वे तात्त्विक विषयों के आनन्द में लौकिक बातों को भूलकर तन्मय हो जाते हैं। अन्य विज्ञाततत्त्व उद्ध विद्वान् तो प्रथम से ही ज्ञानानन्दित हो चुके होंगे। इन पण्डित जी की ज्ञानजन्य, ज्ञानहेतु, वाक्यावलि से हम आप सभी लोकातिक्रान्त आनन्द प्राप्त करें ऐसा निवेदन है। पूज्य ताऊजी स्व० पण्डित नरसिंहदास जी के चित्र का ब्लाक उपद्रवोंके कारण नहीं बन सका इसका भृशं अनुताप है। काकाजी अपना चित्र नहीं छपाना चाहते थे, कई बार निषेध किया, किन्तु श्री सुशीलादेवी जी के भ्राता लाला बलवन्तप्रसाद जी ने छह सात वार जोर देकर

कहा कि परिडत जी का चित्र अवश्य छपेगा। तदनुसार काका जी का चित्र लगा दिया है। चित्र तो पौद्गलिक है आप सहज शुद्ध निर्विकल्प, निरञ्जन, सहजानन्द, चिदात्मतत्त्व परिणति कारणों पर लक्ष्य पहुचाइयेगा।

२५१) सुशीलारानी दिल्ली—ये स्वर्गीय लाला अयुध्या-प्रसाद जी सहारनपुर की बड़ी पुत्री हैं। सम्वत् १६४४ में जन्म हुआ सम्बत् १६६० में विवाह हुआ। समाज प्रख्यात रायबहादुर लाला सुलतानसिंह जी रईस देहली की पत्नी हैं। यहां के धना-ढ्य प्रसिद्ध धार्मिक लाला सुमतिप्रसाद जी, बलवन्तप्रसाद जी, शांतिप्रसाद जी, कान्तिप्रसाद जी की बड़ी बहिन हैं। तत्त्वार्थसूत्र आदि पढ़ी हैं। धर्म में रुचि है। दर्शन, पूजन, व्रत, नियम करती हैं। अष्टमी चौदश को विशेष व्रत रखती हैं, शिक्षित हैं। दैवपरिपाक अटल है, 'यमस्य करुणा नास्ति'। सम्वत् १६८७ में इनको वज्रप्रहारवत् पति-वियोग का दुःख सहना पड़ा। तब से विशेष रूप से परोपकार करने में मनोयोग रखती हैं। अनेक सभा सुसाइटियों की सदस्या हैं। प्रैसीडैण्ट देहली वूमैंस लीग (President Delhi womens league) प्रैसीडैण्ट मैनेजिंग कमैटी इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स स्कूल (President maneging Co-mmitee Indraprastha girls School) अन्य भी बहुत दान देती हैं। इनके छोटेभाई लाला बलवन्तप्रसाद जी यहां बड़े धर्मात्मा सज्जन हैं, विद्वानों के स्नेहानुगामी हैं। जिन-पूजन जाप और ध्यान में दत्तावधान हैं। स्वभाव से मृदु हैं, सर्वदा

शुद्ध भोजन करते हैं, अनेक व्रत पालते हैं। शास्त्र सुनने का भारी चाव है।

१००) गुणमाला देवी—ये यहां के प्राचीन श्रोता स्वर्गीय लाला निहालचन्द्र जी की पुत्री हैं। लाला सुमतिप्रसादजी की गृहिणी हैं। यहां की कन्यापाठशाला की संस्थापिकाओं में से एक हैं। उसकी चिर-मन्त्रिणी रहीं। जिन-पूजन का अनुराग है। व्रत नियमों को पालती हैं। स्वाध्याय अच्छा है। स्त्रियों में उपदेश करती हैं। विनय, लज्जा, आदर विद्वानों में श्रद्धा आदि गुण हैं।

१००) लाला समुन्दरलाल जी—यहां के प्रसिद्ध श्रोता, चर्चा-प्रेमी हैं, कषायें मन्द हैं। जाप, जिन-भक्ति, ध्यान, तत्त्व-चर्चा में विशेष अनुराग है, विद्वद्‌भक्ति है। गृहभार को महेन्द्र-लाल पुत्र सम्भालते हैं। दम्पती—धर्म सेवन करते हैं, अवस्था ६२ वर्ष है। कतिपय यात्रायें कीं हैं।

१२५) श्रीकान्तादेवी—ये मेरी मान्य माता हैं। धर्मपालन में भारी रुचि है। भोजन-शुद्धि, अतिथि सत्कार पर पूरा लक्ष्य रखती हैं। पूज्य पिता जी (पं० माणिकचन्द्र जी) कई बार कठोर रोगाक्रान्त हो गये तो इन्हों ने दिन रात के कष्टों को अणुमात्र नहीं गिना, प्रकाण्ड सेवा करके अच्छा कर लिया। सर्व घर को निराकुल अनुपम स्नेह-पात्र बनाये रखती हैं। कुटुम्ब रिश्तेदारों में भारी प्रतिष्ठा है, गृह-लक्ष्मी हैं। कई बार शिखरजी महाराज की यात्रायें की हैं, जैनबद्री मूलबद्री, गिरनार जी, सौनागिर, बड़वानी

गजपन्था, पावागिरि, पावागढ़, पावापुर की भी वन्दनायें की हैं। व्रतोद्यापन किये हैं। मातृत्व भरा हुआ है। लड़के, बहुयें नाती सब प्रतिष्ठा करते हैं। सत्तर कुटुम्बिजन इनकी आज्ञा मानते हैं। भतीजे, भतीज बहुयें, नाती कुटुम्बी इनकी आज्ञाको शिरसा मान्य करते हैं। इनके दो जेठ विद्यमान हैं, सभी जेठों ने बहुमान रखा इनने भी सासू जेठ, ससुर की अधिक परिचर्या की।

५१) मामचन्द जी सर्राफ, ये युवक होकर धर्म्य-क्रियायों को करने में उत्साही हैं। प्राचीन आम्नाय के पोपक हैं ठोस विद्वान् या त्यागियों में भक्ति रखते हैं इनके पिता जी लाला महावीर प्रसाद जी सज्जन हैं।

इस पुस्तक की प्रेस-कापी लिखाई, हजार प्रतियां छपाई, १६ रिम कागज, प्रेषण, बाइंडिंग आदि में आठ सौ आठ ८०८) रुपये व्यय हुये हैं प्रत्येक वस्तु महर्घ्य हो गयी है।

इस पावन कार्यमें निम्नलिखित श्रावक, श्राविकाओं ने स्वयोग्य बहुभाग सहायता प्रदान की है उनका समयोचित दान श्लाघनीय है।

आयव्ययौ

२५१) श्री सुशीलादेवी	६७) पुस्तक की रफ फेयर दो कापी कराई लेखकको दिये
१००) गुणमाला देवी	
१००) लाला समुन्दरलाल जी	६१५) पं० अजितकुमारजी मा०

५१) भाई मामचन्द जी
१२५) पूज्य मेगी माताजी

६२७)

अकलङ्क प्रेस सहारनपुर को १००० प्रति छपाई १६ रिम कागज बाइंडिंग आदि ।
६४) प्रतियां ४५० बाहर भेजी जावेंगी प्रति पोस्ट ≈)।
२३) सवासौ प्रतियां रजिष्टर्ड भेजी जावेंगी प्रति ≋)
६) स्फुट परितोष

८०८) कुल खर्च

स्याद्वादोन्नतवर्द्धमानहिमवत्पद्मांगतोनिःसृता
स्वान्यज्ञशिश्रृताजटात्तजिनभृद्द्वीपांगविद्वौतमात् ।
सन्तप्तात्महिताप्यकुण्डवदुमास्वाम्याननाद् वाहिता,
निर्देशादिकणान्विकीर्य जिनवाग्गंगा पुनात्वाशु नः ॥
(श्री श्लोकवार्त्तिक हिन्दी टीका)

भवदीयः—
जयचन्द्र जैन कौन्देय शास्त्री,
न्यायतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य